गह्वर-प्रदीप

गह्वरवन के ज्योतिष्मान् संत

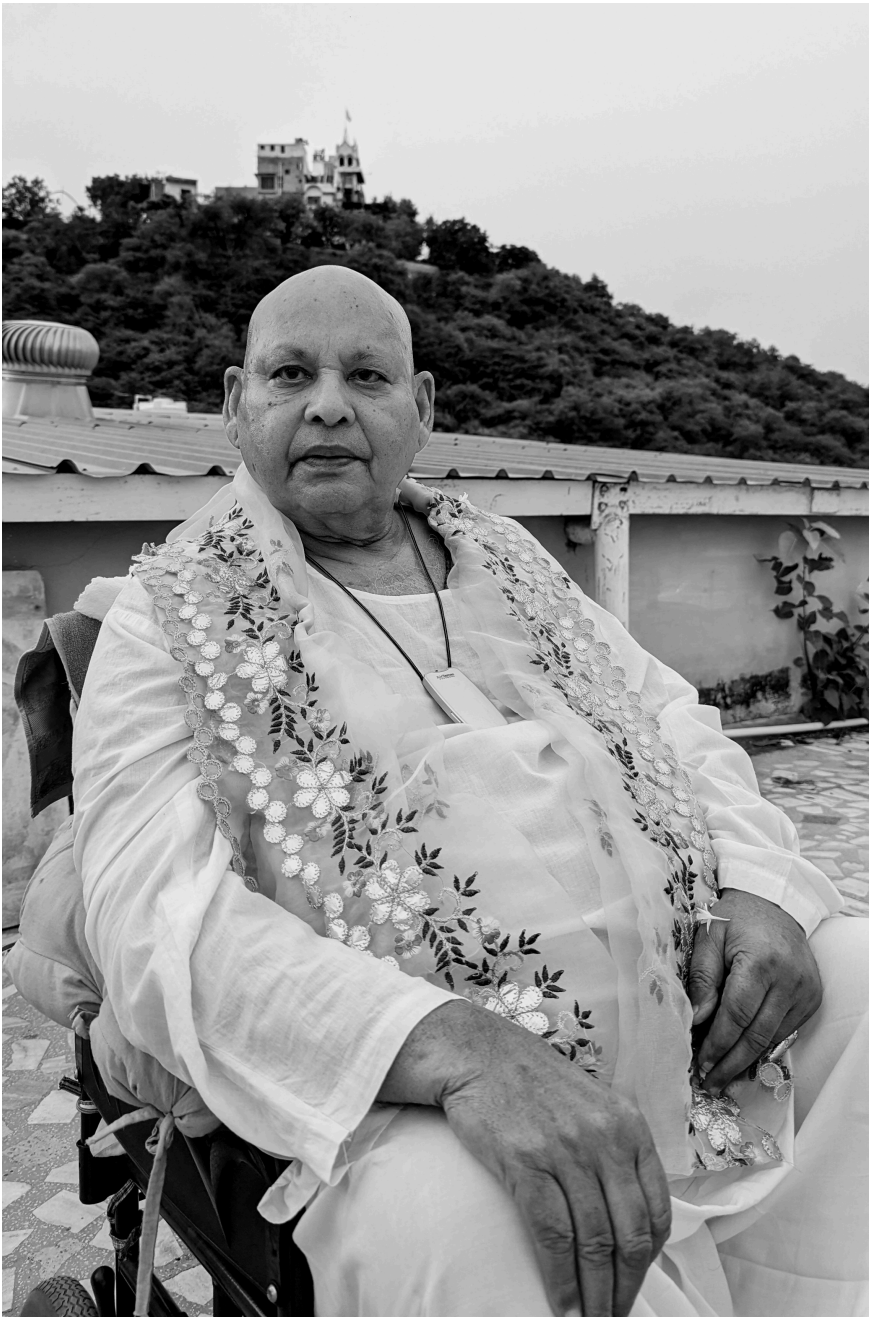

प्रकाशकीय

ब्रज-वसुन्धरा के प्रत्येक रजकण में श्रीराधामाधव का नित्य निवास है तो यह स्वाभाविक है कि इसकी पावन-सन्निधि भला कौन नहीं चाहेगा। लाखों-करोड़ों श्रद्धालुओं का सतत् आवागमन इसकी अद्‌भुत महिमा का द्योतक है; फिर श्रीधाम 'बरसाना' की तो बात ही अलग है, जहाँ परात्पर परब्रह्म की 'आह्लादिनी शक्ति' यहाँ अवतरित होती हैं और यहाँ के अजिर में अनेक बाल-क्रीडाएँ कर अपने भक्तों के हृदय का आभूषण बनती हैं। 'श्रीराधारानी' जिनकी स्मृतिमात्र से नन्दलाल को मूर्च्छा आ जाती है। 'श्रीराधासुधानिधि' के प्रथम श्लोक में वर्णित है कि श्रीकिशोरीजी जब अपने आँगन में कदाचित् किसी क्रीडा में अनुरक्त होती हैं तो उनके सुख की कामना से शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उनके वस्त्र का स्पर्श कर वह नंदगाँव में बालकृष्ण का स्पर्श करती है तो ब्रह्मा-शंकर आदि के लिए भी दुर्लभ वे नन्दलाल अपने को अतिधन्य मानते हैं –

यस्याः कदापि वसनाञ्चल खेलनोत्थ
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्याः नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥

श्रीकृष्ण-स्वामिनी का सबसे प्रिय यदि कोई क्रीडास्थल है तो वह है – गह्वरवन। 'गह्वरवन' जहाँ सघन लता-वृक्षों का ऐसा सौन्दर्य था कि सूर्य-किरण भी वहाँ प्रवेश नहीं कर पाती थी। गह्वरवन में नित्य श्रीकृष्ण आया करते क्योंकि यशोदा मैया स्वयं उन्हें भेजा करतीं; लाला को कोई अलाय-बलाय नहीं लगे और वे सदा सुखी रहें, इसी भावना से सखी कहती है –

नित गहवरवन भेजियो, जो सुख चाहो माय ।
यहाँ की भूमि अलौक है, तुरतहि रोग नसाय ॥

ऐसी पावन भूमि सदा से महापुरुषों की आराधना का केन्द्र रही है । बड़े-बड़े सत्पुरुष यहाँ रहकर भगवत्प्राप्ति कर भक्ति-पथ के प्रेरणा-स्रोत बने । इसी सन्दर्भ में गह्वरवन की पावन अवनि का आश्रय लेकर अखण्ड ब्रजवास करते हुए ब्रज के परम विरक्त संत पद्मश्री 'श्रीरमेशबाबामहाराज' की सत्प्रेरणा से पुरातन कृति 'गह्वर-प्रदीप' के सन्दर्भ में प्रकाशन की आज्ञा हुई, जो पाठकजनों को प्रेरणादायी होगी ।

भूमिका

जो 'गह्वर' के ही प्रदीप नहीं, किन्तु जिनके चरणनख-प्रकाश से सैकड़ों राह भूले हुओं के हृदय में ज्ञान की ज्योति प्रकाशित होकर सन्मार्ग दीख पड़ा, ऐसे पूज्यपाद गुरुवर श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज का विशद विवरण इस छोटी-सी पुस्तक के तीन खण्डों में लिखा गया है।

ब्रजभूमि से श्रीगुरुमहाराज का विशेष अनुराग था। आरम्भ में थोड़ा-सा इस पुनीत भूमि का वर्णन दिया है।

'निम्बार्क सम्प्रदाय' बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध सम्प्रदाय है, इसी पर कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, परन्तु गुरुद्वारे से इस विषय में जो बातें ज्ञात हुईं और जिनसे शिष्यवर्ग को भी परिचित होना चाहिए, वे संक्षिप्त वृत्त इसमें दिये गए हैं। गह्वरवन गुरुद्वारे के शीर्षक में श्रीमहाराज की परम्परागत प्रणाली का वर्णन है।

दूसरे खण्ड में पूज्यपाद श्रीगुरुमहाराज और पूज्यचरण श्रीकिशोरीदासजीमहाराज का विशद वर्णन है और तीसरे खण्ड में उनके शिष्यवर्ग का संक्षिप्त परिचय है। यह परिचय दीक्षा-तिथि के क्रम से लिखा जाना चाहिए था, परन्तु बहुतों की तिथि मालूम नहीं हुई। गुरु-महिमा अपार और गुरु-चरित्र महान है; आरम्भ में इनको संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित 'श्रीगुरुमहाराज के प्रिय श्रद्धालु शिष्य पं० रामप्रसादजी' ने संस्कृत शिखरणी छन्दों में वर्णन किया, जो 'भक्त नामावली' पुस्तक में प्रकाशित हैं, पश्चात् बाबू कन्हैयालालजी ने स्वयं बरसाना पहुँचकर उर्दू-हिन्दी में चरित्र नोट किये। 'गुरु-जयन्ती' पर अब तक ये ही चरित्र सुनाये जाते थे। इस संग्रह को क्रमबद्ध पुस्तक रूप में पढ़ने के सब अभिलाषी थे।

श्रीगुरुचरण-कृपा से 'अलवर राज इतिहास' के लेखक माननीय पं० पिनाकीलालजी इस अभिलाषा की पूर्ति में सहायक हुए । आपने स्वर्गीय राजर्षि श्रीअलवरेन्द्रदेव की पुनीत आज्ञा से श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्रीहंसस्वरूपजीमहाराज का जीवन-चरित्र लिखा है, जिसके उपलक्ष्य में सन् १९३५ के राजशासन-दरबार में अच्छा पारितोषिक पा चुके हैं; 'प्रसिद्ध महात्मा' आदि और पुस्तकें भी लिखी हैं । 'गह्वर प्रदीप' के लिखने का, जो पण्डितजी ने श्रम उठाया है, उनकी इस कृपा का मैं आभारी हूँ । अतः इन सज्जनों का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ ।

अलवर
ज्येष्ठ दशहरा सम्वत् २००१

विनीत –
गंगाबख्श

वक्तव्य

पूज्य महात्माओं के जीवन-चरित्र सम्बन्धी दो-एक पुस्तकें लिखने के पश्चात्, वैसी ही "गह्वर प्रदीप" पुस्तक के लिखने का यह शुभ अवसर माननीय श्रीडॉक्टर गंगाबख्शजी की सत्प्रेरणा से मुझे प्राप्त हुआ है।

आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से जबकि धर्म और सदाचार रूपी वल्लरी मुरझाती जा रही है। धार्मिक शिक्षा के अभाव से आचार-विचार के बन्धन शिथिल पड़ते जा रहे हैं, निरंकुशता और स्वच्छन्दता बढ़ रही है। जिन जातियों में मदिरा-मांसादि दुर्व्यसनों के सेवन का प्रतिबन्ध नहीं है, उनमें इनका अधिक प्रचार बढ़ रहा है। प्रतिबन्ध वाली जातियों में भी संग-दोष का फल आ रहा है। ऐसे समय में अपने उपदेशामृत से सद्धर्म की ओर प्रवृत्त करने वाले, दुर्व्यसनों से छुड़ाने वाले पूज्य महात्माओं का विशद चरित्र लिखते हुए मैं बड़े हर्ष का अनुभव करता हूँ।

इसके लिखने की सामग्री, संवत् १९८६ में प्रकाशित भक्त नामावली पुस्तक और गुरुद्वारे से संग्रह किये हुए जीवन-चरित्र सम्बन्धी उर्दू-हिन्दी नोट डॉक्टर गंगाबख्शजी ने मुझे दिए। ग्रीष्मकाल की कड़ी धूप में एक महीने तक स्वयं नित्य आकर बहुत-सी बातें मुझे बताईं और लेख की कॉपी की। भक्तमाल और ज्ञानेश्वरी से अपने सुविचार के अनुसार कई बातें उन्होंने उद्धृत करायी। बा० दयाशंकरजी ने डोल-फिरकर गुरुद्वारे के गृहस्थी शिष्यों की सूची तैयार करके दी। इन्हीं सब आधारों पर मैंने यह पुस्तक लिखी है।

आज की बातें सौ वर्ष पीछे अलभ्य हो जाती हैं। प्रसिद्ध महात्माओं का वर्णन तो बहुत काल तक सीना-बसीना भी चलता है,

पर जिन सज्जनों का प्रसंगवश इसमें कुछ वर्णन आ गया है, उनकी भावी सन्तान अपने पूर्वजों के आचार-विचार और धर्म-भावनाओं का इसमें परिचय पाकर शिक्षा ग्रहण करेगी ।

जो दुर्गुण और दुर्व्यसनों से बचकर सद्गुण ग्रहण करना चाहें, उनके लिए पूज्य महात्माओं का सत्संग, सदुपदेश और चरित्र पठन आवश्यक है । ऐसा मेरा विश्वास है और इसलिए यह श्रम उठाया है ।

अलवर — विनीत –
ज्येष्ठ दशहरा सम्वत् २००१ — पिनाकीलाल

समर्पण

जिनके दिव्य शरीर में गह्वर-प्रदीप श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज (पूज्यश्रीरणछोड़दासबाबा) का साक्षात् प्रकाश है; ऐसे तपोमूर्ति ज्ञानगम्य पूज्य गुरुवर गह्वरवनस्थ श्री १०८ श्रीकिशोरीदासजी महाराज के कर-कमलों में उनके पूज्य श्रीचरणों के अनुरागी श्रद्धालु भक्तों की ओर से यह पुस्तक सादर समर्पण है ।

Anjana das

गह्वर-प्रदीप

लेखक – पं. पिनाकीलालजी जोशी

गह्वरवनस्थ श्रीसिद्धेश्वरजी महाराज

(श्रीरणछोड़दासबाबा) का विवरण

प्रथम खण्ड

ईशध्यानम्

स्वभावतोऽपास्त समस्त दोषम्
अशेष कल्याण गुणैक राशिम् ।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यम्
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणम् हरिम् ॥१॥
अंगेतु वामे वृषभानुजा मुदा,
विराज माना मनुरूप सौभगाम्,
सखी सहस्त्रै परि सेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम् ॥२॥

श्रीब्रजभूमि

धर्म प्रधान भारत में ब्रज-भूमि का बड़ा माहात्म्य है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश – तीनों देवताओं के यहाँ निवास स्थान हैं । ब्रह्माचल के रूप में श्रीब्रह्माजी का, नन्दीश्वर के रूप में श्रीमहादेवजी का और गिरिराजजी के रूप में श्रीविष्णु का निवास है ।

इसी ब्रज-भूमि में एक बार सतयुग के समय सूर्यास्त हो जाने के पश्चात् निम्ब वृक्ष पर भास्कर देव के पुनः प्रकाश से श्रीनिम्बार्क भगवान् के प्रकट होने का परिचय श्रीब्रह्माजी को मिला था । उस दिन अक्षय तृतीया का दिवस था । प्रसिद्ध गोवर्धन पर्वत के समीपवर्ती निम्ब ग्राम (नीम गाँव) में श्री जगन्नाथ ब्राह्मण के गृह में नियमानन्द नाम से श्री निम्बार्क भगवान् प्रकट हुए थे ।

द्वापर के अन्त में अधर्म और अन्याय के बढ़ने, पुण्यक्षय और पाप के उदय होने से राक्षस वृत्ति के दुष्टजनों का इधर जोर हो गया था । ब्राह्मण व साधुओं का कोई रक्षक नहीं रहा । तब भादों की अँधेरी रात में अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व अष्टमी तिथि को राजा कंस के कारागार में एक अद्भुत प्रकाश ने भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म की सूचना दी । पहरेदारों की आँखें लग गयीं । बालक के पिता वसुदेव और माता देवकी, जो जेल के बन्दी थे, आनन्दित हो गये, पर कंस के भय से भयभीत होकर वसुदेवजी बालक को गोकुल छोड़ आने को विवश हुए ।

श्रीदेवकीजी राजा कंस की बहिन और वसुदेवजी बहनोई लगते थे । इन दोनों निरपराधों को कंस ने केवल इस भय से बन्दी बनाया था क्योंकि इनकी आठवीं सन्तान द्वारा कंस का मरण निश्चित था । अब तक जन्मजात छः बालक मारे जा चुके थे । सातवें श्रीबलरामजी जीवित

रहे । आठवीं सन्तान गोकुल से लायी गयी बालिका थी । उसे भी मारने का प्रयासकर कंस ने सुख की नींद ली ।

जो राजा स्वयं ऐसा अत्याचारी हो, उसकी सरकार द्वारा प्रजा के साथ जितना भी अन्याय हो, थोड़ा है । अपने भ्रकुटि विलास से संसार को नचाने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की लीला अपार है, क्षण भर में उस शक्ति के द्वारा दुष्टों का नाश और अत्याचारियों का दमन हो सकता है, पर नर तन धारण करके दुष्ट दमन और राष्ट्र संगठन का जो उपाय भगवान् ने काम में लिया, वह शिक्षा ग्रहण करने योग्य है ।

बाल्यावस्था में भगवान् ने नन्द बाबा के आँगन में खेल कर नन्द-यशोदा को अपने चरित्रों से मोहित किया । बड़े होने पर नन्द ग्राम और बरसाना आदि आसपास के ग्रामों में अपने साथी बालकों का बिना किसी जातीय भेदभाव के संगठन करके सखा भाव से उनमें परस्पर प्रेम बढ़ाया । गोपालन की ओर सबकी रुचि बढ़ाकर ब्रज के जंगल-पहाड़ों को गो चराने के काम में लिया । दुग्ध माखन के सेवन से शरीर को पुष्ट एवं बलवान बनाना, अपना और अपने सखाओं का मुख्य कार्य रखा । उन दिनों ब्रज के प्रत्येक घर में सायं-प्रातः दूध दुहने और दही बिलोने की ध्वनि सुनायी देती थी । किसी के घर जाने पर दूध, दही और माखन द्वारा सत्कार आजकल की चाय-बीड़ी के समान होता था । इस प्रकार गोप समाज का संगठन करके भगवान् ने गोपिका समाज के संगठन के बिना राष्ट्र हित का कार्य अधूरा समझा और सखा भाव के समान स्त्रियों में सखी भाव और उनके शुद्ध प्रेम की ओर ध्यान दिया । बरसाने की वृषभानुकुमारी श्रीप्रियाजी सब सखियों में पूज्य और शिरोमणि थीं । अपने इस संगठन द्वारा भगवान् ने बाल्यकाल में ही दुष्टों का दमन आरम्भ किया । पूतना का वध हुआ, शकटासुर, अरिष्टासुर, बकासुर, वत्सासुर आदि महाबली असुरों का नाश किया ।

राजा कंस नाते में भगवान् का मामा लगता था किन्तु वह और उसके गुप्तचर भगवान् की इस लीला को न जान सके । राजा कंस अभिमान के अन्धकार में लीन रहा । उसने अपनी स्वाभाविक दुष्टता न छोड़ी । अन्त में भगवान् ने उसको भी मारकर ब्रज-भूमि को दुष्ट और अत्याचारियों से रहित कर दिया । घर-घर में प्रेम भाव, हास्य-विनोद और आनन्द दिखाई देने लगा । भगवान् के प्रति लोगों की श्रद्धा-भक्ति जाग उठी । उसी मनमोहिनी रूप और युगल झाँकी से आज भी सहस्त्रों वर्ष की चर्चा का स्मरण आकर प्रेमी और भक्तजनों का हृदय आनन्दित हो उठता है । जिनका भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम है, उन भक्तजनों को दर्शन देने में भगवान् अब भी विलम्ब नहीं करते । यद्यपि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, पर यहाँ केवल निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्माओं का ही वर्णन किया जा रहा है ।

ब्रज में सुनहरा अथवा पाछोल ग्रामों की कदम्ब-खंडी नाम से एक स्थान विख्यात है । भगवान् के प्रेम भाव में उन्मत्त श्रीनागाजी (चिन्तामणि देवजी) जैसे विरक्त महात्मा की हींस के पेड़ में कई दिन से उलझी हुई जटाओं को युगल सरकार ने दर्शन देकर स्वयं सुलझाया था । अलाउद्दीन खिलजी के समय में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख महात्मा श्री केशव काश्मीरीजी ने जगत प्रसिद्ध श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर मथुरा में बनवाया था । इसके विषय में प्राप्त हुए एक प्राचीन लेख से प्रकट होता है कि उन दिनों हिन्दुओं को अपने धर्म की रक्षा में यवन बाधा डाल रहे थे । उस समय श्रीकेशव काश्मीरीजी ने सुदर्शन चक्र का आवाहन करके हिन्दुओं की रक्षा की, जिनकी कृतज्ञता उक्त लेख में प्रकट की गयी है ।

श्रीनाभाजी कृत भक्तमाल में लिखा है –

केशौभट नर मुकुटमणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ॥
काशमीर की छाप, पाप तापनि जग मंडन ।
दृढ हरि भक्ति कुठार, आन धर्म विटप विहण्डन ॥
मथुरा मध्य मलेछ, बाद कर वरवट जीते ।
काजी अजित अनेक देख परिचय भै भीते ॥
विदित बात संसार, सब सन्त साखिनाहिन दुरी ।
केशौ भट नर मुकुटमणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ॥

रसखान कवि ने ब्रज के इन्हीं प्रसिद्ध मन्दिरों की मनमोहिनी युगल झाँकी करके मक्का यात्रा का विचार स्थगित कर दिया था । ब्रज पर आक्रमण करके पाषाण हृदय औरंगजेब ने मन्दिर तुड़वा दिए, परन्तु उसके इतना करने पर भी जो प्रेम और भक्तिभाव हिन्दू जनता में था, वैसा ही प्रेम ब्रज-भूमि के देवालयों में ही क्या, ब्रज के रजकण में अब तक बना हुआ है, जिसका कारण है ब्रज-भूमि में निवास करने वाले प्रसिद्ध महात्मा भगवद्भक्त साधु-सन्तों का सदुपदेश । इन्हीं पूज्य महात्माओं में हुए हैं, बरसाना, गह्वरवन के पूज्यपाद श्रीसिद्धेश्वरजी महाराज, जिनको रणछोड़दासजी भी कहते हैं ।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय

सतयुग में श्री निम्बार्क भगवान् के गोवर्धन में प्रकट होने का वर्णन है । त्रेता में विष्णुक्षेत्र में राक्षसों के दमन के लिए श्रीसुदर्शन चक्र महाराज, हविरधान मुनि रूप धारण कर प्रकट हुए । द्वापर में बद्रिकाश्रम के निकट करण प्रयाग क्षेत्र में ऐरावती माता से श्री निम्बार्क भगवान् का जन्म हुआ । कलियुग में तैलिङ्ग देश में अरुण ऋषि के गृह में जयन्ति माता के गर्भ से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को नियमानन्द नाम

से प्रकट हुए। प्रत्येक युग में प्रकट होने वाले श्री निम्बार्क भगवान् के नाम से निम्बार्क सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ।

इस सम्प्रदाय की प्राचीनता के सम्बन्ध में ये प्रमाण मिलते हैं –

नारायण मुखाम्भोजान् मंत्रस्त्वष्टा दशा क्षरः ।
आविरभूत कुमारैस्तु ग्रहीत्वा नारदाय च ॥
उपदिष्टः स्व सिष्याय निम्बार्काय च तेनतु ।
एवं परंपरा प्राप्तो मंत्रस्त्वष्टा दशक्षर ॥

(विष्णुयामल से उद्धृत)

सनन्दनाद्यै मुनिर्भिस्त तथोक्त ।
श्री नारदाया खिल तत्त्व साक्षिणो ॥

(वेदान्त कामधेनु से)

एतावान योग आदिष्ट मच्छिष्यै सनकादिभि ।

(श्रीमद्भागवत)

सनकादि ऋषियों ने अपने पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया था कि विषय चित्त में और चित्त विषयों में लगा रहता है, इनका त्याग कैसे हो ? इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर पाने के लिए ब्रह्माजी ने भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान किया, तब भगवान् ने हंस रूप से प्रकट होकर कार्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी) को सांख्य योग का उपदेश दिया, इस कारण यह हंस तथा सनकादिक सम्प्रदाय भी कहा जाता है। श्रीसनकादिक ने श्रीनारदजी को और उन्होंने श्रीनिम्बार्क भगवान् को अष्टादशाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया तथा श्रीसर्वेश्वरजी की सेवा सनकादिक ने श्री नारद भगवान् को सौंपी। वही सेवा अब भी परशुरामपुरी में है।

सुदर्शन चक्र, जो भगवान् श्रीकृष्ण के दायें हाथ में है, वह श्रीनिम्बार्क स्वरूप में प्रकट होकर इस सम्प्रदाय के आचार्य हुए । ये चक्र रूप होकर भक्तों की अम्बरीष आदि के समान रक्षा करते हैं । आप ही ने आचार्य रूप में वेद-उपनिषदों का सिद्धान्त निर्णय किया । गो चारण में आप तोष सखा, हाथ में लकुटी, सखियों में श्रीरंगदेवीजी, श्रीजी के आभूषणों में नथ, श्रीमहाराज के अंग में कान्ति, गौओं में धूसर गौ, चतुर्व्यूह में अनिरुद्ध हैं । इसी प्रकार आप भगवान् की सब लीलाओं में सम्मिलित हैं । नैमिषारण्य में चक्रतीर्थ पर आपका स्थायी निवास है ।

आचार्य चतुर्व्यूह चार हैं – श्रीकृष्ण भगवान्, श्रीहंस भगवान्, श्रीअनिरुद्ध भगवान् और श्रीनिम्बार्क भगवान् ।

प्रधान शिष्य पाँच हैं – १. श्री भट्ट भास्कर भगवान्, २.श्रीयकनाथ भगवान्, ३. श्रीउदम्बर ऋषिजी, ४. श्रीगौरमुखजी, ५. श्री श्रीनिवासाचार्यजी । इस सम्प्रदाय का मुख्य भाव माधुर्य है, सम्प्रदाय के आचार्य श्रीजीमहाराज के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं ।

मुख्य गादी

इस सम्प्रदाय की मुख्य गादी तैलिङ्ग देश में है, पर आजकल सलेमाबाद (परशुरामपुरी) में प्रधान गद्दी है । इस गद्दी के मालिक श्री गोपेश्वर शरणदेवजी आरम्भ में जयपुर में निवास करते थे और एक लाख रुपये आसन्न की वार्षिक जीविका राज से पाते थे, पर महाराज रामसिंहजी के समय में शैव मत के विशेष प्रचार से अपने धर्म सिद्धान्तों पर कटाक्ष और अनुचित हस्तक्षेप देखकर उनके लिए जयपुर ठहरना असह्य हो गया । तब वे जीविका और मन्दिर की सारी विभूति को छोड़कर केवल सर्वेश्वर भगवान् को साथ में लेकर जयपुर से चल दिए,

जो अब सलेमाबाद के मन्दिर में विराजमान हैं; यहाँ प्रधान मूर्ति श्रीराधामाधवजी की है ।

सलेमाबाद कृष्णगढ़ राज्य में है । पहले इधर सलेमशाह नाम के एक फकीर रहते थे, जिन्होंने अपनी करामात से राजा को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया था । यह फ़क़ीर साधु-सन्तों का घोर अनादर करता और उनके द्वादश अंगों में गरम चिमटे से तिलक लगाता था । यह चर्चा मथुरा में श्रीहरिव्यासदेवजी से की गयी; उन्होंने श्रीपरशुरामदेवजी को जाँच के लिए भेजा, जिनके विषय में भक्तमाल में श्रीनाभाजी ने लिखा है –

जंगली देश के लोग सब "परशुराम" किये पारषद ॥
ज्यों चन्दन को पवन नींव पुनि चन्दन करई ।
बहुत काल तम निविड उदै दीपक ज्यों हरई ॥
श्रीभट पुनि हरिव्यास सन्त मारग अनुसरई ।
कथा कीरतन नेम रसन हरि गुण उच्चरई ।
गोविन्द भक्ति गद रोग गति तिलक दाम सद वैद्य हद ।
जंगली देश के लोग सब "परशुराम" किये पारषद ॥

श्रीपरशुरामदेवजी की सेवा-पूजा में श्री सर्वेश्वर भगवान् थे, वे तो उन्होंने श्री हनुमानजी को सौंपे और स्वयं उन्होंने फकीर के बदनेबोरियों को एक स्थान में करके वहाँ आसन लगा दिया । इस बात से क्रुद्ध होकर फ़क़ीर ने शान्त चित्त महात्मा के दो थाप पीठ पर मारी । वे चुपचाप सहन करते रहे । फ़क़ीर ने तीसरी थाप और भी जोर से मारी । उसे भी परशुरामदेवजी ने सहन किया, पर फ़क़ीर का हाथ उनकी पीठ पर चिपका रह गया । फकीर छटपटाने लगा और परशुरामदेवजी के पाँव में गिरकर क्षमा प्रार्थी हुआ तथा कहने लगा कि आप सच्चे साधु हैं, जो इतनी सहनशीलता रखते हैं, परन्तु मुझमें शैतानियत है, जो गुस्से (क्रोध) को रोक नहीं सका । फकीरी का सच्चा उपदेश आज आपसे पाया

हूँ । मैं आपका शिष्य हूँ । यह स्थान अब आपका है, यहीं निवास करें । उसी स्थान पर अब एक मन्दिर है, जहाँ श्री सर्वेश्वर भगवान् विराजमान हैं । इस कथानक की स्मृति के लिए गाँव का नाम सलेमाबाद रखा गया । उस भक्त फकीर की यहाँ एक कब्र है, जिस पर श्री सर्वेश्वरजी की प्रसादी बीड़ी माला चढ़ाई जाती है । इस फ़क़ीर के अनुयायी स्थान पर लकड़ी डालने की परम्परा अब तक निभा रहे हैं ।

मुख्य गादी की परम्परा

इस सम्प्रदाय के प्रधान पाँच शिष्यों में एक श्री श्रीनिवासाचार्यजी हुए हैं । उनकी शिष्य प्रणाली में श्री केशव काशमीरीजी थे, जिनका कुछ वर्णन पहले आ चुका है । इनके शिष्य श्री श्रीभट्टजी महाराज रसिक मुकुटमणिजी थे, जो बड़े विद्वान् और हिन्दी ब्रजभाषा के माने हुए कवि थे । उनके विषय में नाभा जी ने भक्तमाल में लिखा है –

"श्रीभट" सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥
मधुर भाव समिलित ललित लीला सु बलित छवि ।
निरखत हरखत ह्वदै प्रेम वरखत सु कलित कवि ॥
भव निस्तारन हेत देत दृढ भक्ति सबनि नित ।
जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित ॥
आनन्द कन्द श्री नन्दसुत श्री वृषभानुसुता भजन ।
"श्रीभट" सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥

श्रीभट्टजी के शिष्य श्रीहरिव्यासदेवजी थे, जिनके विषय में नाभाजी ने भक्तमाल में लिखा है –

श्रीहरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी को दीक्षा दई ।
खेचरनर की शिष्य निपट अचरज यह आवे ।

विदित बात संसार सन्त मुख कीरत गावे ॥
बैरागिन के वृन्द रहत सँग स्याम सनेही ।
ज्यों जोगेश्वर मध्य मनो शोभित वैदेही ॥
श्रीभट्ट चरण रज परसते, सकल सृष्टि जाको नई ।
श्रीहरिव्यास तेज हरि भजन बल, देवी को दीक्षा दई ॥

श्रीहरिव्यासदेवजी के अनेक शिष्यों में बारह प्रधान शिष्य इस प्रकार हैं –

१. श्री स्वयंभूदेवजी
२. श्री बोहितदेवजी
३. श्री हृषीकेशजी
४. श्री माधवदेवजी
५. श्री चण्डीदेवजी
६. श्री लपरागोपालजी
७. श्री परशुरामदेवजी
८. श्री केशवदेवजी
९. श्री बाहुबलदेवजी
१०. श्री गोपालदेवजी
११. श्री मदनगोपालजी
१२. श्री उद्धवदेवजी

प्रधान गद्दी – सलेमाबाद की शिष्य प्रणाली में श्रीपरशुरामदेवजी के शिष्य श्रीहरिवंशदेवजी थे, उनके पश्चात् श्री नारायणदेवजी, श्री वृन्दावनदेवजी, श्री गोविन्ददेवजी, श्री गोविन्दशरणदेवजी, श्री सर्वेश्वरशरणदेवजी, श्रीनिम्बार्कशरणदेवजी, श्री ब्रजशरणदेवजी, श्री गोपीशरणदेवजी और श्री घनश्यामशरणदेवजी हुए, जिनके शिष्य श्री महाराज बालकृष्णशरणदेवजी सलेमाबाद की गद्दी पर विराजमान हुए।

श्रीरासलीला का प्रकाश

श्रीबोहितदेवजी के शिष्य श्रीघमण्डदेवजी थे, जो रास-बिहारी भगवान् के बड़े रसिक और प्रेमी थे; इनको करहला ग्राम में, जो श्री बरसाना से तीन मील की दूरी पर है, श्रीठाकुरजी की मुकुट-चन्द्रिका प्राप्त हुई, जिसको धारण कराके उन्होंने ब्रजवासियों में रासलीला का प्रचार कराया । इनके शिष्य बहुत से विरक्त महात्मा हुए हैं, जिनमें से गोवर्धन में किलोल कुण्ड पर महात्मा नारायणदासजी थे, उनके शिष्य राधिकादासजी हैं, श्री वृन्दावन में धर्मदासजी, गोकुलदासजी, किशोरदासजी, भगवान् दासजी, मानदासजी, माधवदासजी प्रभृति महात्मा हुए हैं ।

श्रीगह्वरवन-गुरुद्वारा

यह स्थान मथुरा से १२ कोस (३६ किमी.) दूर, बरसाना में ब्रह्माचल पर्वत की तलहटी में स्थित है, जो गहन वृक्षों की छाया से आच्छादित और बड़ा रमणीय है । इस सुन्दर, सुहावन और शान्त वन में एक पुरानी कुटी है, जिसको निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा श्री सिद्धेश्वरजी (श्री रणछोड़दासजी) ने ३४ (चौंतीस) वर्ष तक निरन्तर वास करके पावन और सुहावन किया है । इनकी गुरु प्रणाली का वर्णन इस प्रकार है –

श्री श्रीनिवासाचार्यजी की शिष्य प्रणाली में श्रीहरिव्यासदेवजी के प्रसिद्ध द्वादश शिष्यों में श्री स्वयम्भूदेवजी माता के गर्भ से जन्म न लेकर गायों के खिरक से प्रकट हुए । वे गो सेवा और दया के अवतार कहे जाते हैं । इनके शिष्य कान्हड़देवजी और उनके शिष्य श्री परमानन्ददेवजी थे ।

श्रीपरमानन्ददेवजी के शिष्य श्री चतुरसेन नागाजी (चिन्तामणिदेवजी) हुए, जिनकी कुछ चर्चा पहले हो चुकी है । ये युगल

सरकार के बड़े भक्त और विरक्त महात्मा थे, किसी एक स्थान पर टिकते नहीं थे। प्रातः मंगला के दर्शन वृन्दावन में श्रीगोविन्ददेव जी के करते, वहाँ से श्रीकेशवदेवजी की श्रृंगार झाँकी के लिए मथुरा जाते, राज भोग आरती के दर्शन गिरिराजजी में करते और सायंकाल कामवन में होकर शयन आरती के दर्शन नन्द ग्राम में करते।

श्रीगोवर्धनजी में श्रीनाथजी के भोग-राग में उत्तमोतम व्यञ्जनों का भोग लगाया जाता था, पर एक दिन उस भोग के साथ एक अँगाकड़ी (जौ-चने की छोटी सी मोटी रोटी) प्रसाद में दिखाई दी। श्री गोस्वामीजी ने पूछा – 'यह अँगाकड़ी महाप्रसाद में रख देने की धृष्टता किसने की है ?' भण्डार के प्रबन्धकों ने इनकार किया। गोस्वामीजी इस बात की जाँच में बेचैन थे। रात को स्वप्न में श्रीनाथजी महाराज ने इस भेद को यों प्रकट किया कि हमारे प्रिय भक्त नागाजी ने गिरिराज में यह अँगाकड़ी हमको भोग में लगायी है तो हमने अपने प्रिय भक्त की अर्पित वस्तु को प्रथम स्वीकार किया।

यह निश्चय है कि नागाजी की इस अँगाकड़ी का भोग अब भी 'नाथद्वारा' में श्रीनाथजी महाराज को लगाया जाता है। ब्रज में पाछोल की कदम्बखंडी, इन्हीं नागाजी के नाम से प्रसिद्ध है। वहीं पर इनको श्री युगलसरकार के दर्शन हुए थे। ऐसे प्रेमोन्मत्त महात्मा के दर्शन को दूर-दूर से लोग आते थे और इनके एक जगह न टिके रहने से दर्शनार्थी इनके पीछे-पीछे फिरा करते थे।

नाभाजी ने इनके सम्बन्ध में भक्तमाल में लिखा है –

श्रीस्वामी चतुरो नगन, मगन रैन दिन भजन हित ॥
सदा जुक्त अनुरक्त भक्त मंडल को पोषत ।
पुर मथुरा ब्रजभूमि रमत सब ही को तोषत ॥
परम धरम दृढ करन देव श्री गुरु आराध्यो ।

मधुर बैन सुठि ठौर-ठौर हरिजन सुख साध्यो ॥
सन्त महन्त अनन्त जन जस बिस्तारत जासु नित ।
श्रीस्वामी चतुरो नगन, मगन रैन दिन भजन हित ॥

इनके शिष्य श्रीमोहनदेवजी, श्रीद्वारकादेवजी, श्रीगिरिधरदेवजी, श्रीरामदासजी, श्रीहरिदासजी, श्रीअमरदासजी और श्रीजमुनादासजी उत्तरोत्तर हुए।

श्रीजमुनादासजी के शिष्य श्रीगोविन्ददासजी बड़े प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं । कहा जाता है कि तुलसाना के मन्दिर में एक बड़े सरदार ने मकान बनवाया था । उसकी छत पर पट्टियाँ चढ़ाते समय एक पट्टी तड़क कर गिरने लगी । नीचे के आदमी भागना चाहते ही थे कि महात्माजी ने गिरती हुई पट्टी को लकड़ी के सहारे से रोक लिया, जिससे सब बच गये । महात्माजी ने मकान बनवाने वाले से कहा कि तुमने अच्छी कमाई का रुपया इसमें नहीं लगाया, जिससे यह घटना हुई । खोटी कमाई का धन भेंट में चढ़ाना भी अपराध है, जिसकी शान्ति साधु-ब्राह्मणों को भोज देकर कराई जा सकती है ।इनके शिष्य श्रीघनश्यामदासजी को ही श्रीघनश्यामशरणदेवजी कहते थे । इनका स्थान तुलसाना ग्राम उदयपुर राज्य में है । इनके त्याग और सेवा भाव से उन दिनों इस स्थान की बड़ी प्रसिद्धि थी । साधु-सन्तों की अच्छी सेवा होती थी । राधा-कृष्ण नाम के एक ब्राह्मण बालक ११ (ग्यारह) वर्ष की अवस्था में इस स्थान पर आकर ठहरे, जिनकी भक्ति भाव में प्रीति देखकर महात्माजी ने उनको अपना शिष्य बना लिया और रणछोड़दासजी नाम रखा । यही महात्मा रणछोड़दासजी श्रीसिद्धेश्वरजी नाम से प्रसिद्ध हुए।

द्वितीय खण्ड

श्री १०८ श्रीसिद्धेश्वरजी महाराज (रणछोड़दासबाबा)

गुरु वन्दना – (ज्ञानेश्वरी से उद्धृत)

अब मैं विश्वाभास का अस्तकर उदित होने वाले ज्ञानसूर्य श्रीगुरुदेव का वन्दन करता हूँ, जो अविद्या रूपी रात्रि को दूरकर, ज्ञानाज्ञान रूपी चाँदनी का नाश करता है और ज्ञानियों के लिए आत्मबोध रूपी सुदिन प्रकाश करता है, जिसका प्रातःकाल होते ही जीव रूपी पक्षी आत्मज्ञान रूपी आँखें खोलते और देहाभिमान रूपी घोंसले से बाहर निकलते हैं । जिसके उदय होते ही सूक्ष्म देह रूपी कमल के गर्भ में क्षीण होकर रहने वाला जीव, चैतन्य रूपी भ्रमर बन्धु से मुक्त हो जाता है । जिसके प्रातःकाल के प्रकाश में पांथिक योगी आत्म साक्षात्कार बाट चलने लगते हैं, जिसकी विवेक रूपी किरणों के संग से ज्ञान रूपी सूर्य कान्ति मणि की चिंगिया झड़ती हैं और संसार रूपी प्रणय को जलाती है । अतएव ज्ञान रूपी नगर में महानन्द की भीड़ लग जाती है और सुखानुभव के लेनदेन की मन्दी हो जाती है । अतएव ज्ञान सूर्य श्री गुरुदेव को बारम्बार केवल नमस्कार ही करता हूँ, क्योंकि स्तुति करना शब्दों की बाधा ही करना है । मौन को आलिंगन देने से ही जिसकी स्तुति हो सकती है, जिसकी स्तुति करने के लिए बैखरी वाणी, पश्यन्ति और मध्यमा को लील लेती है और फिर परा सहित विलीन हो जाती है, ऐसे आपको हे गुरुदेव ! मैं सेवक रूप से इस वाचनिक स्तुति के अलंकार पहनाता हूँ । हे आनन्दमय ! आपसे इनके स्वीकार करने की विनती करना भी न्यून है परन्तु दरिद्री यदि अमृत का सागर देखे तो उसे योग्य-अयोग्य स्वागत की विस्मृति हो जाती है और वह साग-भाजी से ही पहुनाई करने को उद्यत होता है । उस समय वस्तुतः उसकी साग-भाजी को ही बहुत समझना चाहिए, उसके हर्ष वेग

की ओर ही ध्यान देना चाहिए । आरती दिव्य रूप देवता को प्रकाशन करने की चेष्टा में आरती करने वाले की भक्ति ही देखना चाहिए । बालक यदि योग्यायोग्य ही जाने तो बालकपन ही क्या रहा ? पर सचमुच माता ही है, जो उससे सन्तुष्ट होती है । वैसे ही मैंने आपको बुद्धि की तुला में रखकर सूर्योपमा के माप से तोलने की चेष्टा की है, उसके लिए क्षमा कीजिये । मैं एक सामान्य मनुष्य और आपके गुणों पर मुग्ध हुआ हूँ, इसे अपराध न समझिये और क्षमा प्रदान कीजिये ।

श्रीगह्वरवननिष्ठ संत श्रीरणछोड़दासजी का जीवन-परिचय

संवत् १८६७ में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को धौलपुर राज्य के विरोध नामक ग्राम (जो मुचुकुन्द गुफा के पास है) में श्रीरणछोड़दासजी (सिद्धेश्वर महाराज) का जन्म हुआ था, इनकी माता सुमित्रा देवी और पिता श्रीबलरामजी उच्च कुल के सनाढ्य ब्राह्मण थे । बालक की जन्मपत्री और हस्तरेखाओं को देखकर पिता जान गये थे कि त्यागमूर्ति भगवद्भक्त का घर में जन्म हुआ है । ब्राह्मणोचित संस्कार के पश्चात् विवाह-बन्धन में फँसने से पूर्व श्रीसालिगरामजी को साथ ले माता-पिता से बिना पूछे अचानक घर से चल दिए, उस समय इनकी अवस्था ११ वर्ष थी । घूमते-फिरते हुए ये उदयपुर राज्य के तुलसाना नामक ग्राम में पहुँचे । कुछ दिन यहाँ निवास करने के पश्चात् प्रसिद्ध महन्त श्रीघनश्यामशरणदेवजी से गुरु-दीक्षा ली और चित्त लगाकर सेवा भाव में रत हुए ।

इनके दादागुरु श्रीगोविन्दशरणदेवजी भी उन दिनों विद्यमान थे, उनसे इन्होंने ब्रजयात्रा का विचार प्रकट किया तो उन्होंने कहा – कुछ दिन ठहरो, हमारे निकुंजवास का समय निकट आ गया है, भस्मी साथ लेकर जाना और निधिवन में विराजमान कर देना । आज्ञा शिरोधार्य करके कुछ दिन बाद भस्मी सहित वृन्दावन पहुँचे और भस्मी को

यथास्थान स्थापन करने के पश्चात् ये १० वर्ष तक वृन्दावन में निवास करते रहे । वहाँ पर विद्वज्जन मुकुटमणि श्रीनृसिंहदासजीमहाराज, श्रीनन्दकिशोरजी एवं श्रीनन्दकुमारदेवजी से विद्याध्ययन किया; यही तीनों वैभव सम्पन्न विज्ञानमूर्ति इनके विद्यागुरु थे । विद्याध्ययन के पश्चात् करहला नामक ग्राम (जो नन्दग्राम से ३ कोस की दूरी पर अग्निकोण में है) में निवास करके विद्या के मनन और भगवद्भजन में तल्लीन रहे । वहाँ से चलकर श्रीनन्दग्राम में निवास किया और भगवल्लीलाओं पर विचार करते रहे, पीछे श्रीबरसाना (श्रीवृषभानुपुर) में १२ वर्षों तक ठहरे, यहाँ अध्ययन और मनन से निवृत्ति लेकर सेवाभाव की ओर प्रवृत्त हुए। श्रीलाडलीजी के भण्डार की सेवा का भार आपने ग्रहण किया । संवत् १९३९ तक इस सेवा कार्य को तन-मन से करते रहे, पश्चात् गह्वरवनकुटी में ३४ वर्ष तक श्रीप्रियाजी का ध्यान करते हुए दया, भक्ति और सेवाभाव का उपदेश भक्तजनों को देते हुए संवत् १९७२ में १०५ वर्ष की अवस्था पाकर निकुंजवास किया । उस समय का वृत्तान्त पंडित रामप्रसादजी रचित 'भक्त नामावली' में लिखा है –

"निकुञ्जौ कोयनात् प्रथम दिवसे श्रूयत इदं ।
हरे साक्षात् कारोऽभवद् मित मारो दित रुचः ॥
तुलस्या आसन्नेऽद्भुत परम शोभालय इह ॥
भ्रम देवे शाद्यैरपि न सुलभोऽहो य उदितः ॥"

अर्थात् सुना है कि निकुंजवास से एक दिवस पूर्व तुलसीजी के समीपवर्ती स्थान में अनन्त कोटि कामदेव की छबि वाले श्रीहरि का आपको साक्षात्कार हुआ जो इन्द्रादिक को भी दुर्लभ है ।

श्रीयमुनावल्लभगोस्वामी रचित भक्तमाल में लिखा है –

"श्रीरणछोड़दासजी आश अति अमित करी निम्बार्क पद ।
गह्वर बन अति सघन मगन मन तहाँ निवासी ॥
अटल प्रबल विश्वास भक्ति भावुक सुख राशी ।
पुरुष सिंह सम भाव सार सिद्धान्त प्रकाशी ॥
दर्श दिये साक्षात् जिन श्री लाड़ली अनल्प मुद ॥"

विद्वत्ता और साधुता

श्रीरणछोड़दासजीमहाराज बाल ब्रह्मचारी और बड़े तपोमूर्ति महात्मा थे, इन्होंने घर पर साधारण पठन-पाठन का बोध किया था। ११ वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर थोड़े दिन तो पूज्य गुरु और परम पूज्य दादागुरु की सेवा में रहे और उनसे साधु-भावों की शिक्षा पायी, पीछे वृन्दावन में रहकर व्याकरण पढ़ा, साथ ही श्रीमद्भागवत, श्रीभगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वृन्दावन गये थोड़े ही दिन हुए थे कि इनके पिता श्रीबलरामजी खोज लगाते वहाँ पहुँच गये और एक दिन इनको पहचान लिया। पिता ने वात्सल्यभाव से पुत्र को समझाया। माता-पिता के वियोग जनित दुःख की करुण कहानी और अपने वृद्धावस्था के कष्टों का वर्णन करते हुए घर चलने के लिए विवश करने लगे, पुत्र का स्वाभाविक हृदय भी माता-पिता की व्यथा सुनकर द्रवित होने लगा। परन्तु अपने अध्ययन और साधुता के भावों को स्मरण करके उस समय युक्तिपूर्ण भाव से यह सूझ पड़ा कि उन दिनों चौके चूल्हे और कच्चे-पक्के भोजन का जो ब्राह्मणों में अत्यधिक बन्धन था – अन्य जाति का छुआ भोजन कर लेने पर जाति च्युत दण्ड मिलता था। ये पिता से कहने लगे कि मैं आपकी सेवा में इस कारण नहीं चल सकता क्योंकि साधु-संगत में रहने और मधुकरीव्रत-ग्रहण करने से यदि जाति वालों ने इस बात पर आक्षेप उठाया तो मेरे चलने से उल्टा आपको क्लेश होगा। ऐसी दशा में विद्याध्ययन और साधुता से भी आप

मुझे क्यों वंचित रखते हैं ? पिता ने कहा कि विद्वत्ता और साधुता बड़े सौभाग्य से मिलती है, इसलिए साधु ही रहो, पर ऐसे साधु बनना जिससे कि हमारा और दूसरों का कल्याण हो; ऐसा सुनकर श्रद्धाभाव से पुत्र ने सिर नवा दिया और पिता ने प्रेमभाव से हाथ रखकर वहाँ से विदा ली ।

दस वर्ष तक श्रीवृन्दावन में विद्याध्ययन करने से इनको अपने धर्म-ग्रन्थों का अच्छा बोध हो गया था । २५ वर्ष की पूर्ण युवावस्था, शरीर पर ब्रह्मचर्य का तेज और विद्याबल से इनकी कान्ति का अधिक प्रकाश दीख पड़ता था; उस समय इन्होंने नगर का निवास छोड़कर करहला नामक छोटे-से ग्राम के एक निर्जन स्थान में साधोचित तपश्चर्या करके मन को एकाग्र किया ।

अनूप नगर, जिला बुलन्दशहर में गंगा-स्नान के मेले पर स्वामीदयानन्दसरस्वती से इनकी भेंट हुई । दो विद्वान् साधुओं की शास्त्र-चर्चा सुनने के लिए सैकड़ों विद्या-धर्मप्रेमियों का जमघट लग गया । इस शास्त्रार्थ में स्वामीजी को महात्माजी से यह कहना पड़ा कि आपने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पूर्ण अध्ययन और मनन किया है, इसी कारण अपने पक्ष-समर्थन में आप अविचल हैं । साथ ही उन्होंने एक रुपया श्रीसर्वेश्वरजी को भेंट करके आपके दर्शन और मिलन पर प्रसन्नता प्रकट की ।

सेवा भाव और सहनशीलता

विद्या और मन की एकाग्रता पाकर ये सेवाभाव की ओर प्रवृत्त हुए । बरसाने में भी श्रीलाड़लीजी के भण्डार की बड़े परिश्रम से इन्होंने सेवा की । श्रीजी के शयन के पश्चात् नित्य रात्रि में बरसाने से १२ कोस दूर वृन्दावन पहुँचते और प्रातः श्रीरङ्गजी के बगीचे से पुष्प लेकर बरसाना में मंगला-आरती के समय लौटते । मन्दिर में सेवा का क्रम किस प्रकार हो ? मंगला से शयन पर्यन्त किस श्रद्धा और विधि के साथ

सेवा की जाए, इन सोच-विचारों के साथ उत्तमोत्तम विधियों को काम में लाते और सेवा करने वालों को समझाते। सेवा के इनके वे क्रम और बीड़ी (पान) प्रचार, जो इनके समय में प्रचलित हुए, श्रीजी के मन्दिर में सदा इनकी स्मृति दिलाते रहेंगे।

एक बार महाराजजी गह्वरवन में गायों के स्थान पर बुहारी लगा रहे थे; उस समय चित्रकूटनिवासी रामानुज-सम्प्रदाय के एक साधु इनकी प्रशंसा सुनकर परीक्षा लेने आये और इनको बुहारी लगाने की धुन में देखकर निन्दा करते हुए बड़बड़ाने लगा किन्तु ये अपने कार्य में ऐसे तल्लीन थे कि उधर कोई ध्यान नहीं दिया। बुहारी से निवृत्त होकर इन्होंने उस साधु का बड़े आदर- भाव से स्वागत करते हुए कहा कि निन्दा के योग्य तो यह शरीर है ही, अब आप कोई सेवा कार्य बतलाइये। इस सहनशीलता को देखकर वह साधु गद्गद हो गया और गले मिलकर इनसे कहने लगा कि जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं अधिक आकर अनुभव की।

किसी अन्यत्र स्थान से आये हुए एक साधु ने जानबूझकर समीपवर्ती तुलसी के थाँवले पर थूककर इनकी परीक्षा लेनी चाही। साधु के इस अशिष्ट व्यवहार पर इन्होंने कुछ भी खेद-प्रकाश नहीं किया। झट से उठकर जल और गोबर-मिट्टी से थाँवले को शुद्ध किया और बड़े प्रेमभाव से साधु का स्वागत-सत्कार किया। ऐसे निरभिमानी शान्त स्वभाव महात्मा का सत्संग पाकर वह साधु बड़ा सन्तुष्ट होकर लौटा।

वृन्दावन की दतियावाली कुञ्ज में श्रीमहाराजजी एक बार रासलीला देखने गये, वहाँ ये दूर खड़े हुए थे, इनके शिष्यों की दृष्टि पड़ी तो उन्होंने सिंहासन के पीछे खड़े हुए दो साधुओं को हटाकर महाराजजी के लिए जगह की और उन्हें वहाँ बुला लाये। उन दोनों साधुओं ने उस

समय तो कुछ नहीं कहा किन्तु एक दिन बरसाने जाकर श्रीजी के मन्दिर की परिक्रमा में इनके ऊपर लाठी प्रहार के द्वारा बदला लिया । लोगों ने उन साधुओं को पकड़कर मार-पीट करना चाहा परन्तु आपने उनको छुड़ाकर नम्रता के बर्ताव का उपदेश दिया; इस शीलभाव को देखकर दोनों साधु लज्जित होकर इनके पाँव पर गिर पड़े ।

भण्डार का दायित्वपूर्ण कार्य श्रीमहाराजजी के हाथ में होने से किसी के यहाँ प्रसाद पहुँचने में त्रुटि हो जाना स्वाभाविक था । एकबार श्रीलाड़लीजी के भण्डार में बर्तन पहुँचाने वाले कुम्हार ने समय पर महाप्रसाद न मिलने से क्रुद्ध होकर इन पर मूँठ का प्रयोग कराया, जो उल्टा उसके लिए ही हानिकारक हुआ, महात्माजी ने उससे सहानुभूति प्रकट की; यह देखकर कुम्हार ने इनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगी ।

बरसाने के दानबिहारी के मन्दिर में रहने वाले काशी निवासी एक विद्वान ने कई कारणों से क्रोधित होकर इनके ऊपर मारण-मन्त्र का प्रयोग किया, जो स्वयं उसके लिए दुःखप्रद सिद्ध हुआ । महात्माजी ने सुना तो उस विद्वान से कहा कि मेरे द्वारा सेवा में कोई त्रुटि हो गयी थी तो आपको प्रकट कर देना चाहिए था; इस सहनशीलता को देखकर विद्वान पंडितजी क्षमाप्रार्थी हुए ।

द्वेषवश एकबार एक साधु ने किसी दूसरे साधु के हाथ श्रीजी का प्रसाद बताते हुए विष मिश्रित पेड़े सायंकाल इनके पास भेजे । उनको पा लेने से इनको उल्टी (वमन) हो गयी और अचेत हो गये । ऐसी दशा में श्रीलाड़लीजी ने दर्शन देकर इनके सिर पर अपना हाथ रखा तथा इन्हें सान्त्वना दी । महात्माजी उस साधु को जान गये थे, इस विष का बदला लेने के लिए इनसे कई शिष्यों ने आग्रह किया, परन्तु आपने उसे क्षमा करना ही उचित समझा ।

कुछ लोग श्री सिद्धेश्वरजी महाराज से अकारण ही द्वेष किया करते थे। ऐसा प्रायः अधिकतर संतों-भक्तों के साथ होता आया है। गह्वरवन की सीमा के अन्तर्गत स्थित किसी मन्दिर में एक भैरो का उपासक तामसी साधक रहा करता था। महाराजश्री के गौरव और यश को देखकर वह उनके प्रति अत्यधिक द्वेष की ज्वाला में जलने लगा। उसका द्वेष इतना बढ़ा कि एक बार उस तामसी भैरो के उपासक ने महाराज श्री को जान से मारने के लिए भैरो का अनुष्ठान किया। उसके इस अनुष्ठान के सिद्ध होने पर एक बार आधी रात के समय भैरो का वाहन एक भयानक कुत्ता गह्वरवन स्थित महाराज श्री की गोपाल कुटी में आया और दरवाजा खोलकर उनकी कुटिया में प्रवेश किया किन्तु राधारानी के अनन्य उपासक श्री सिद्धेश्वर जी महाराज अपने श्रीइष्ट (परम करुणामयी राधिकारानी) के द्वारा संरक्षित थे। इसलिए भैरो का वह भयावह कुत्ता उनके निवास स्थान पर पहुँचकर भी उनका बाल भी बाँका नहीं कर पाया, उनको थोड़ा भी नुकसान नहीं पहुँचा सका और अन्त में जिस स्थान से वह आया था, दुम दबाकर उसी स्थान को वापस लौट गया।

ब्रजभूमि के प्रति प्रेम

एकबार आपके गुरु श्रीघनश्यामशरणदेवजी ने गुरुद्वारा 'तुलसाना' में आने के लिए आपको पत्र दिया। वे अपने सामने ही इनको अपनी गद्दी पर बिठाना चाहते थे। उनके मनोभावों को जानकर भक्तिभाव के साथ क्षमा प्रार्थना करते हुए इन्होंने ब्रजभूमि की महिमा इस प्रकार लिख भेजी –

तच्छास्त्रं मम कर्ण मूलमपिनं स्वप्नेऽपियाया दहो ।
श्रीवृन्दाविपिनस्य यत्र महिमा नात्यद्भुतः श्रूयते ॥

तेमे दृष्टि पथं न यान्तु नितरां संभाष्यतां प्राप्नयुः ।
श्रीवृन्दावन वैभवे श्रुतिगतेऽप्युल्लासिनो नोखलाः ॥१॥

सा मे न माता स च मे पिता नो ।
स मे न बन्धुः स च मे सखा नो ॥
स मे न मित्रं स च मे गुरुर्नो ।
यो मे न वृन्दावन वास मादिशेत् ॥२॥
मिलन्तु चिन्तामणि कोटि कोट्यः ।
स्वयं बहिर्दृष्टि मुपैतुवाहरिः ॥
तथापि वृन्दावन धूलि धूसरं ।
न देहमनयत्र कदापि यातु मे ॥३॥
छिद्येत खण्डश इदं यदि मे शरीरं ।
घोर विपद् विततयो यदि वा पतन्तु ॥
हा हन्त हन्त न तथापि कदापि भूयाद् ।
वृन्दावना दितर तुच्छपदे यियासा ॥४॥

यद्यपि ब्रजभूमि के प्रति आपने अपना ऐसा अगाध प्रेम और निश्चल भावना स्पष्ट रूप में प्रकट कर दी, परन्तु थोड़े दिन पीछे ही गुरुचरण-सेवा का स्मरण आते ही ये अचानक ही तुलसाना पहुँचे और श्रद्धा-भक्ति के साथ गुरु-सेवा में तल्लीन हुए। कुछ समय पीछे एक दिन दोपहर की कड़ी धूप में जब गुरुजी आराम कर रहे थे और ये उनके शरीर पर पंखे हवा कर रहे थे, ब्रज की याद आ जाने पर इनकी आँखों से प्रेमाश्रु निकलकर लेटे हुए गुरुजी के पृष्ठ भाग पर पड़े। गुरु महाराज उसी समय ताड़ गये, श्रीरासबिहारी भगवान् की लीलाभूमि का अतिशय प्रेम देखकर प्रसन्नचित्त होकर बोले – हम तुम्हारी इस सेवा से बहुत सन्तुष्ट हैं, अब हम चाहते हैं कि तुम ब्रजभूमि में ही जाकर निवास करो। तब ये तुलसाना से लौट आये। ब्रजभूमि में ऐसा कोई गाँव न

था, जो आपने न देखा हो और जहाँ के ब्रजवासी आपसे परिचित न हों।

आकृति और स्वभाव

श्रीमहाराज का शरीर लम्बा, सुडौल और सुदृढ था, गौरवर्ण, आजानबाहु एवं विशाल ललाट था; इनके मस्तक और शरीर पर ब्रह्मचर्य का तेज झलकता था। सिर पर घूँघर वारे बाल, मोटी-मोटी आँखें तथा गले में तुलसीजी की कंठी शोभा देती थी। व्यायाम के नित्य अभ्यास से बड़े शक्तिशाली प्रतीत होते थे। इनकी मृदु मुस्कान दर्शनार्थियों के मन को हरणकर आनन्दित कर देती थी, इनका स्वभाव बड़ा दयालु और कोमल था। किसी पर क्रुद्ध होना तो ये जानते ही नहीं थे। दूसरे के दुःख-दर्द को देखकर दयार्द्र हो जाते थे। भूत-प्रेतादि रोग की व्याधियों से व्यथित स्त्री-पुरुष जब आपकी सेवा में लाये जाते थे तो इनका कोमल हृदय उनके शरीर की ऐंठन और दुःखद दशा को देख नहीं सकता था, उनकी व्याधि के दूर करने का ये तुरन्त ही उपाय करते थे।

दिलावर सिंह नाम के एक भक्त को किसी विषम अपराध पर फाँसी का दण्ड मिला था। महात्माजी ने देखा कि वह निरपराध फँसा है। उसके भाइयों ने ही उसके विरुद्ध द्वेषवश झूठा अपराध सिद्ध कराया है। आपने अपनी दयादृष्टि से उसको फाँसी से बचा लिया, जिसका वह सदा कृतज्ञ रहा।

एक बार गुरु पूर्णिमा पर आप गिरिराजजी पधारे। वहाँ आपके एक भक्त कन्हैया नाई ने अपनी कन्या के विवाह की छाक आपकी सेवा में अर्पित की। इनके साथ में और भी बहुत से साधु थे, उन सबके लिए वह छाक पर्याप्त नहीं थी। संकेत पाते ही एक सेठ ने लड्डू-पूड़ी तैयार

करा दिए, जो उस छाक से कहीं उत्तम भोजन था, पर आपने अपने भक्त की छाक को ही बड़े प्रेम से पाया ।

सादगी और गौसेवा

साधुता और परदुःखहरण की चर्चा से ब्रज में आपकी बड़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी, किन्तु आप इतनी सादगी और सीधेपन से रहते थे कि आरम्भ में इनसे मिलने वाले को एकाएक यह ज्ञान नहीं हो सकता था कि ये वही प्रख्यात महात्मा हैं । श्रीजी के भोग के अनेक व्यंजनों का महाप्रसाद प्रस्तुत होने पर भी आप प्रायः मधुकरी का ही सेवन करते थे । श्रीमहाराजजी (सिद्धेश्वरजी) को बरसाना के श्रीजी के मन्दिर में भोग-प्रसाद के भण्डार गृह की सेवा का भी अधिकार प्राप्त था । किन्तु फिर भी वे श्रीजी मन्दिर का प्रसाद नहीं पाते थे, ब्रजवासियों के घर से मधुकरी माँगकर ब्रजवासियों की रोटी को श्रीजी को अर्पित कर वही प्रसाद पाते थे । एक बार श्रीजी मन्दिर के गोस्वामियों ने उनसे कहा कि 'बाबा ! आप श्रीजी का प्रसाद न ग्रहणकर ब्रजवासियों की मधुकरी द्वारा प्राप्त रोटी खाते हैं ।' गोस्वामियों के इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए श्री सिद्धेश्वरजी महाराज ने एक ब्रजवासिनी छोटी-सी बालिका को बुलाया और उसमें श्रीजी की भावना करते हुए उसके सामने दो पात्रों में से एक में श्रीजी मन्दिर की प्रसादी खीर और दूसरे पात्र में ब्रजवासियों की मधुकरी द्वारा प्राप्त रोटी रख दी तथा बालिका से कहा – 'हे लाडो ! तुम जिस प्रसाद को रुचिपूर्वक पाती हो, उसे अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर लो ।' अत्यधिक आश्चर्यजनक घटना हुई कि महाराजजी के ऐसा कहने पर उस बालिका ने श्रीजी मन्दिर की प्रसादी खीर को ग्रहण न करते हुए, दूसरे थाल में रखी ब्रजवासियों की रोटी को अत्यधिक प्रेम से उठाया और खाने लगी और इस तरह श्रीजी ने सिद्ध कर दिया कि मेरे मन्दिर के प्रसाद से भी अधिक श्रेष्ठ है ब्रजवासियों की मधुकरी । प्रायः

ब्रजप्रेमियों (ब्रजरसिकजनों) ने अखण्ड ब्रजवास करते हुए भिक्षावृत्ति से ब्रजवासियों से मधुकरी माँगकर ही श्रीयुगलसरकार (प्रिया-प्रियतम) की आराधना की है ।

घण्टों तक आप गायों के स्थान में बुहारी लगाते थे । मोटे रजकण को छलने से छान-छानकर गऊ के स्थान में रजकण बिछाते और उन पर स्वयं लेटकर देखते कि रजकण मोटे तो नहीं रह गये हैं । गायों को आप बड़े ही प्रेम से पुचकारते, उनके शरीर को बार-बार पोंछते और उनके मुख को हाथ में लेकर गद्गद् हो जाते । भक्तजन खड़े होकर इस दृश्य को देखा करते थे । आपकी गौसेवा- भक्ति बड़ी ही अद्भुत थी, आपके द्वारा सेवित गायें इतनी हृष्ट-पुष्ट व शक्तिशाली थीं कि उनसे बड़े-बड़े बिजार (बैल व साँड़) तक डरते थे; एक बार आपकी एक गाय (जिसका नाम 'जमुना' था) को जन्म देते समय (गौ-वत्स को जन्मते हुए) बहुत कष्ट हुआ तो आपने कहा कि जमुना ! अब दुबारा मत ब्याना तो फिर वह गाय पुनः कभी नहीं ब्याई; ऐसा आपका विशेष गौ-प्रेम व गायों का आपके प्रति अगाध स्नेह था ।

आप गायों का गोबर स्वयं थापने बैठ जाते थे, साथ ही सत्संग-चर्चा चलती रहती थी । उस समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि बिना हाथ धोये हाथों से ही प्रसादी पाने को उद्यत हो जाते और याद दिलाने पर चेतसे में आते और हाथों को शुद्ध करते । कभी-कभी शौच से निवृत्त होने पर उन्हें हस्त-पाद प्रक्षालन का भी ध्यान नहीं रहता था ।

कोई आपके चरणस्पर्श करता तो झट छुड़ाने का प्रयत्न करते और अपने को सबका सेवक और दास बताते, मान-बड़ाई से दूर भागते और प्रायः कहा करते थे –

प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा गौरवं नरक रौरवम्,
अभिमानं सुरापानं त्रीणित्यक्त्वा सुखी भवेत् ।

जाति विद्या महत्वंच रूप यौवन मेव च,
वर्जिते प्रयत्नेन पंचैते भक्ति कंटकः ॥

एकबार आपका एक भक्त फोटोग्राफर को साथ लेकर आया और चित्र लेना चाहा, पर आपने इस बात को स्वीकार नहीं किया और कहने लगे कि चित्र तो हृदय में चित्रित होना चाहिए, चित्र ले भी लिया और भावना न रही, तो उससे क्या लाभ ?

आप प्रायः पैदल यात्रा किया करते थे । सवारी-गाड़ी में दयावश यों नहीं बैठते थे कि बैलों को कष्ट होगा । आपने रेल में भी कभी यात्रा नहीं की । आप अपने नित्य क्रम को रेल के समय से मिलाने में अड़चन समझते थे ।

दिव्य दृष्टि

दूसरे के मन की बात को और चित्त में उठी हुई शंकाओं को जानते हुए भी भोलेपन में अपने को छुपाये रखते थे और प्रसंगवश उन बातों तथा शंकाओं का समाधान ऐसे ढंग से करते थे कि सुनने वालों को उनका दिव्य ज्ञान आश्चर्य में नहीं डालता था । अपने प्रश्न और भावों को बिना प्रकट किये ही सत्संग-चर्चा में उन प्रश्नों व भावों का समुचित उत्तर पाकर लोग तृप्त एवं आनन्दित होकर लौटते थे ।

एक दिन इनके परम शिष्य श्रीकिशोरीदासजी भंडारी मथुरा में श्रीगोपालजी की पोशाक के लिए कपड़ा लेने गये थे । जो कपड़ा वह लाये थे, उसमें से आधा श्रीजी की पोशाक के लिए भण्डार में छोड़ आये । उस शेष कपड़े को हाथ में लेकर श्रीमहाराजजी ने सीधे स्वभाव से कहा कि इसका आधा भाग भी इसमें शामिल करो, जिससे दो पोशाक बनेगी ।

डॉक्टर गंगाबख्शजी एक बार कोसी से बरसाना जा रहे थे । रास्ते में नन्दग्राम के पास उन्हें एक ठग मिला । वह उन्हें मार्ग भुलाकर

जंगल में ले गया और लूटना ही चाहता था कि आकस्मिक गुरु कृपा से बच गये । जब गुरुद्वारे पहुँचे तो श्रीगुरुमहाराज ने प्रसंग ही प्रसंग में उस ठग की सब बात कह सुनाई ।

शिष्यगण

महाराजजी के मुख्य ४२ विरक्त शिष्यों में से कुछ ही का संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं –

श्रीलाड़लीदासजी – ये चतुर्वेदी ब्राह्मण थे । मथुरा में बहुत दिन तक पुलिस ऑफीसर रहे, श्रीमहाराजजी का सत्संग पाकर ये उनकी शरण में आये और दीक्षा लेकर घर-बार छोड़ दिया, केवल एक कौपीन लगाये, तूँबी और बंसी हाथ में लिए ये ब्रज में भ्रमण किया करते थे । भूख-प्यास की इनको परवाह नहीं थी । पाछोल और कनवारा की कदमखण्डी, जहाँ के गाँवों में अधिकांश गूजर जाति के चोरी-पेशा लोग रहते थे, त्याग और वैराग्य को देखकर इनके सदुपदेश से सद्धर्म की ओर प्रवृत्त हुए तथा चोरी छोड़कर उन्होंने कंठी-तिलक धारण कर लिया । अब इनका निकुंजवास हो चुका है ।

श्रीवृन्दावनदासजी – कायस्थ कुल में आपका जन्म हुआ था, महाराजजी से गुरुदीक्षा लेकर ये विरक्त हो गये, आप सदा ब्रजभूमि में विचरा करते थे; अपने प्रभावशाली उपदेशों से बहुतों को इन्होंने वैष्णवधर्म की ओर प्रवृत्त किया, कई लोग इन्हीं के सत्संग और सदुपदेश से विरक्त हो गये और उन्होंने ब्रज में साधुता की ख्याति पायी ।

श्रीसर्वेश्वरदासजी – इन्होंने ब्रज में कई कुएँ और तालाब बनवाये । ये बड़े विरक्त महात्मा और विद्वान् थे । पाछोल की कदमखंडी में ये रहते थे ।

श्रीकिशोरीदासजी – यही श्रीभण्डारीजी महाराज हैं, जो श्रीमहाराज के स्थानापन्न हैं, इनका पूर्ण परिचय आगे दिया गया है ।

इनके अतिरिक्त श्रीकान्हड़दासजी करहला में भजन करते थे। श्रीललितादासजी गह्वर कुण्ड पर रहते थे। श्रीमंगलदासजी अब गह्वर कुण्ड पर विराजमान हैं। श्रीललितादासजी कायस्थ बावड़ी पर विराजते थे। श्रीराधाबाईजी ने गौसेवा और भण्डार-सेवा १२ वर्षों तक की, ये चिकसौली ग्राम के विहारकुण्ड पर विराजती थीं। श्रीअनन्तदासजी, श्रीसनकादिकदासजी, श्रीदामोदरदासजी, श्रीनागरीदासजी, श्रीमनोहरदासजी प्रभृति शिष्य ४२ शिष्यों में हैं।

श्रीरणछोड़दासजीमहाराज के कृपापात्र 'श्रीकिशोरीदासजीमहाराज'

वन्दना (ज्ञानेश्वरी से उद्धृत)

हे श्रीगुरुराज ! हे गणेन्द्र ! जिनकी योग समाधि द्वारा जगत का विकसित रूप मलिन हो जाता है, उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आपके विषय में मूढ़ हैं उनके लिए आप वक्रतुण्ड हैं परन्तु ज्ञानियों के लिए आप निरन्तर सरल ही हैं। आपकी दृष्टि देखने में सूक्ष्म दिखाई देती है, परन्तु अपने नेत्र खोलते और बन्द करते ही उत्पत्ति और लय दोनों आसानी से कर देते हैं। प्रवृत्ति रूपी कान हिलाते ही मन्द गन्धयुक्त वायु से आकर्षित होने, हारे जीव रूपी भ्रमर आपके गण्डस्थल पर ऐसे शोभा देते हैं मानों आपकी नीलकमलों से पूजा की गई हो। हे अनन्त ! जब निवृत्ति रूपी कान की झटकार से भ्रमर उड़ जाते या पूजा का विसर्जन हो जाता है, तब आपके निर्मुक्त शरीर का लावण्य शोभा देता है। आपकी बामाङ्गी जो माया है, उसकी नृत्य-क्रीडा से यह जगत रूप आभास है, वह वास्तव में ताण्डव के मिससे आपके ही कौशल्य का परिचय देता है। यह रहने दीजिये, हे आश्चर्यकर्ता ! आपसे जिसे बन्धुत्व का सम्बन्ध हो जाता है, वह बन्धुत्व के व्यवहार से वञ्चित हो

रहता है । बन्धन मिटते ही आपके जगत्-बन्धु भाव के द्वारा आप में ही आनन्द प्राप्त कर लेता है । जो ध्यान के द्वारा आपको मन में रखने की चेष्टा करता है, उसके लिए आप उसके प्रदेश में नहीं रखते; पर जो ध्यान भी भूल जाता है, उस पर आप प्रेम करते हैं । जो सिद्ध-सर्वज्ञ बन रहता है, वास्तव में वह भी आपको नहीं जानता । वेदों की जैसी वाणी भी आपके कानों तक नहीं पहुँचेगी । मौन आपका राशि नाम हो रहा है । फिर मैं कहाँ तक स्तुति करने का हौंसला रखूँ । आप देव और मैं आपका सेवक होना चाहता हूँ ।

श्रीकिशोरीदासजीमहाराज का जीवन-परिचय

किसी भी स्थान की शोभा पूर्ववत् तभी बनी रह सकती है, जब पीछे से योग्य शिष्य सँभालने वाले हों । श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज (बाबा रणछोड़दासजी) के निकुंजवास के पश्चात् भण्डारी श्रीकिशोरीदासजी महाराज ने संवत् १९७२ में गुरुद्वारे का दायित्वपूर्ण कार्य भार अपने हाथ में लिया । तभी से आपने अपने सतत् सेवा भाव और साधु परायणता से स्थान की कीर्ति को अधिकाधिक समुन्नत किया ।

किशोरीदासजीमहाराज का जन्म काँगड़ा जिले में नन्दपुर ग्राम के प्रतिष्ठित व्यासकुल में हुआ था । आपके पिता श्रीगोविन्दलालजी तीन भाई थे, जिनके तीन गाँव की जमीदारी थी, पर तीनों के कोई सन्तान नहीं थी । एक महात्मा की सेवा और भक्तिभाव का यह फल हुआ कि संवत् १९२१ में श्रीगोविन्दलालजी के घर श्रीबन्नू माता की पवित्र कूँख से उन्हीं सेवित महात्मा ने जन्म लिया । सारे परिवार में आनन्द और मंगल छा गया । सुन्दर बालक को गोद में खिलाकर सभी आनन्दित होने लगे । एक समय इनके पिता रासलीला दिखाने को ले गये । वहाँ रासबिहारी लीलाधारी भगवान् की गोद में खेलकर पूर्व जन्म का स्मरण हुआ । १३ वर्ष की अवस्था तक ये खेल-कूद व पठन-पाठन

में लगे रहे। एक दिन अचानक घर छोड़कर ये चल दिए तथा अमृतसर, लाहौर, मुल्तान, डेराह, स्माइल खाँ, सिन्ध, हैदराबाद में विचरते हुए रहीमगिरि पर पहुँचे और वहाँ साल भर तक तपश्चर्या करते रहे। वहीं साधु वेष में श्रीनारद भगवान् ने इन्हें दर्शन देकर श्रीगोपाल मन्त्र का उपदेश दिया और ब्रजभूमि में सद्गुरु मिलने का आश्वासन दिया। वहाँ से घूमते-फिरते एक सप्ताह भावलपुर रहकर शिकारपुर पहुँचे, जहाँ के रईस ने इनको गोद लेने की इच्छा प्रकट की। ये घर से ३ गाँवों की जमींदारी छोड़कर विरक्त हुए थे, यहाँ और भी अधिक गाँवों की जमींदारी का लोभ आपके मन को विचलित न कर सका। वहाँ से आप चल दिए और सैकड़ों कोस की यात्रा करते हुए नारायण सरोवर पहुँचे। वहाँ कुछ दिन विश्राम करके नालिया कुठारा ग्राम में आकर बीमार पड़ गये, तब एक स्त्री ने माता के समान इनकी सेवा की। स्वस्थ होने पर ग्रामवासियों को एक मास तक आपने श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी। वहाँ से चलने लगे तो गाँव वालों ने पीछा न छोड़ा, पर एक दिन बिना कहे ही अचानक आप वहाँ से चल दिए और श्रीद्वारकाजी पहुँचकर वहाँ दो मास तक निवास किया। छः महीने ये गिरिनार में रहे, वहाँ से जोधपुर राज्य के बाड़मेर ग्राम में आकर कुछ दिन विश्राम किया। उन दिनों वहाँ के लोग वर्षा के अभाव से अकाल पीड़ित हो रहे थे। आपने एक ब्राह्मण से शंकर भगवान् की आराधना कराकर सहस्त्रधारा का प्रयोग कराया। उस गाँव में अधिकांश जैन धर्मावलम्बी बसते थे। जब उन्होंने देखा कि आकाश में बादल छाकर घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी है तो गाँव के सभी लोग आपके श्रद्धालु भक्त हो गये, परन्तु आप उधर अधिक न ठहरे, ब्रजभूमि का प्रेम इनको खींचने लगा और इसलिए वहाँ से चल दिए।

मथुरा, गिरिराज एवं वृन्दावन के कालीदह पर कुछ दिन निवास करके ये श्रीप्रियाजी के धाम श्रीबरसाना में आये। वहाँ एक निम्ब वृक्ष

के नीचे आसन लगाकर बैठ गये । दोपहर के २ बजे आप श्रीजी के दर्शन करने जा रहे थे, उस समय आपको श्रीप्रियाजी के महल की ओर से आती हुई नौ-दस वर्ष की बालिका दिखाई दी, जिसने कहा – 'ओ बाबाजी ! अब तो दर्शन हो चुके, शाम को ४ बजे मैं बुलाने आऊँ तब आना ।' जब ४ बज गये और कोई बुलाने नहीं आया, तब आप स्वयं गये तथा समझ गये कि यह सब लीला श्रीलाड़लीजी की ही है । वहीं पर आपको श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज के दर्शन हुए । उधर अपनी हार्दिक श्रद्धा और भक्ति का झुकाव देखकर इन्होंने अपने सद्गुरु को पहचान लिया । श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज ने भी पूर्व परिचित की भाँति योग्य शिष्य पाकर इन्हें गुरुदीक्षा दी और वैष्णवधर्म के अनेक रहस्यों का सदुपदेश दिया, जिससे पूर्ण शान्ति पाकर ये भक्तिभाव से गुरु-सेवा में तल्लीन हो गये । दो वर्ष तक ये घाटा के बगीचे से श्रीलाड़लीजी की सेवा-पूजा के लिए फूल लाते रहे ।

पूज्य गुरुदेव ने सेवा का समस्त भार आप पर छोड़ दिया था, इन्होंने तन-मन से श्रीजी के भण्डार की सेवा की । संवत् १९५७ से संवत् १९८२ तक २५ वर्षों के लम्बे सेवाकाल में लगभग १ लाख रुपये श्रीजी के भण्डार में आपके द्वारा खर्च हुए । इसके बाद आप भण्डार का कार्य छोड़कर गह्वरवन में कुटी में निवास करने लगे । यही पर आपने श्रीगोपालजी का मन्दिर, गौशाला और श्रीगुरुमहाराज का समाधि कुञ्ज निर्मित कराया है ।

गुरु-सेवा

पूर्व जन्म के अच्छे संस्कारों से ही माता, पिता और गुरुजनों की सेवा का शुभ अवसर प्राप्त होता है । यह सौभाग्य की ही बात थी, जो २०-२५ वर्ष की अवस्था से आपको गुरुसेवा का अवसर मिला और संवत् १९७२ तक तीस वर्ष पर्यन्त आपने तन-मन से श्रीगुरुमहाराज की सेवा की । बिना गुरु आज्ञा के आप कोई काम नहीं करते थे । यहाँ तक

कि श्रीजी के दर्शन को भी आज्ञा लेकर ही जाते थे । इन्हीं सब बातों से आप श्रीगुरुमहाराज के परम प्रिय विश्वासपात्र शिष्यों में थे । बाह्य और आन्तरिक सभी भेदभावों से आपको परिचित करा दिया गया था । धर्म सम्बन्धी विषय और सेवा सम्बन्धी समस्त कार्य श्रीगुरु महाराज ने आप पर ही छोड़ दियाथा । गुरु-सेवा का ही यह प्रताप था जो आपको तपोबल और सिद्धि प्राप्त हुई ।

तपोबल-प्रभाव

इनका तपोबल भक्तों के लिए लाभप्रद था । ऐसा कहा जाता है कि एक दिन स्वयं इनको करहला ग्राम में अनुष्ठान करते हुए श्रीलाड़लीजी का साक्षात्कार हुआ क्योंकि इनका तपोबल और भक्तिभाव जो कुछ भी था, श्रीलाड़लीजी की सेवा के लिए ही था ।

समथर वाले राजाजी को आपके आशीर्वाद से पुत्र जन्म का लाभ हुआ, जिन्होंने श्रीलाड़ली के महल में चाँदी के पत्रों के किवाड़ अर्पित किये । फतेहपुर सीकरी के बंसीधर भक्त ने मनोरथ सिद्धि पर श्रीजी के लिए चाँदी पत्र का बहुत बड़ा हिंडोल बनवाया ।

एकबार गह्वरवन में रासलीला हो रही थी और आप ज्वराक्रान्त होने से सेवा में न पहुँच सके । श्रीरासबिहारी ने आपको याद किया; श्रीगुरुमहाराज की आज्ञा पाकर ये रुग्ण दशा में ही आये और दण्डवत की । कहा जाता है कि इन्होंने स्वस्थचित्त होकर रासलीला देखी और ज्वर जाता रहा ।

एकबार श्रीवृन्दावन की दतिया वाली कुञ्ज में रास हो रहा था, उस समय आपने स्वरूपों को बीड़ी भोग धारण कराने की इच्छा प्रकट की, परन्तु मण्डली के स्वामी ने ऐसा नहीं करने दिया । आपको यह बात अखरी और इसलिए प्रसाद नहीं पाया, जब स्वयं रासबिहारी ने बीड़ी माँगी, तब गुरुमहाराज की आज्ञा पाकर आपने बीड़ी प्रसादी अर्पित की और तभी आपने प्रसाद पाया ।

श्रीबद्रिकाश्रम की यात्रा के समय आप भक्तिभाव में रत हुए पहाड़ पर चले जा रहे थे, वहाँ दो पुरुष मिले, जिन्होंने अपना भेद तो प्रकट नहीं किया पर उनकी आकृति और सुमधुर वचनों से यह जान लिया गया कि साक्षात् नर-नारायण के दर्शन हुए हैं । थोड़ी देर के पश्चात् वे लुप्त हो गये ।

गंगोत्री स्नान के लिए जब आप पधारे तब वहाँ भीड़ के कारण स्नान कठिन हो गया था । ये एकान्त स्थान में आसन लगाकर ध्यानमग्न हो गये । कहा जाता है कि श्रीभगवती भागीरथी ने वहीं प्रवाहित होकर इन्हें स्नान कराया । इसी प्रकार वसुधारा का प्रवाह, जहाँ आप श्रीगोपालजी की सेवा में ध्यानमग्न थे, निजमार्ग छोड़कर प्रवाहित हुआ ।

स्नेह व दया भाव

गुजरात देश निवासी साधु रामरक्षादासजी श्रीरामानुज सम्प्रदाय के शिष्य थे । वे गह्वरवन में आये और श्रीकिशोरीदासजीमहाराज के दर्शन करके उनसे दीक्षा लेने को आतुर हुए । उन्हें समझाया गया तो वह निराश होकर कुटी की परिक्रमा में बैठकर रोने लगे और कहने लगे – 'जो श्रद्धा आपके पुनीत चरणों में हो चुकी, वह तो हट नहीं सकती । अब आपके अपना लेने से ही मेरा कल्याण है ।' इनके श्रद्धा भावों को देखकर आपने इनको शिष्य बना लिया, जो अब ब्रजभूमि में विचरते रहते हैं ।

सिरसा ग्राम की ज्ञानी नामक जाटनी को आप पर इतनी श्रद्धा हो गयी कि घर में किसी के रुग्ण होने पर तथा गाय-भैंसों के दूध न देने पर आपका चरणोदक ले जाती और उसके सेवन को रामबाण औषधि समझती और लाभान्वित होती ।

जीसुख गुसाईं को एक बार सर्प ने डस लिया, आपको दया आई और मोर पंखी नाम की एक जड़ी पानी में पीसकर सर्प दंश पर लगा दी, श्रद्धालु भक्त को तुरन्त इसी से लाभ हो गया ।

आकृति और स्वभाव

ब्रजभूमि के तपोमूर्ति, वयोवृद्ध, सिद्धि प्राप्त साधुओं में श्रीकिशोरीदासजीमहाराज की पूर्ण ख्याति है । आप बड़े निरभिमानी और शान्त प्रकृति के महात्मा थे । क्रोध पर आपने सर्वथा विजय प्राप्त कर ली थी । आपका शरीर सुदृढ और सुडौल था, श्याम वर्ण, मोटी आँखें तथा चेहरे की आकृति गोल थी । गले में तुलसी की कंठी और वेष-भूषा साधारण थी । चेहरे की मृदु मुस्कान और चित्त की प्रफुल्लता शरणागत दुःखीजन के हृदय को आनन्दित कर देती थी । दयालुता और कोमलता के भाव, जो साधुजन की स्वाभाविक साधना है, दयापात्र कभी उससे वंचित नहीं रहते हैं । आजन्म ब्रह्मचारी रहने से वृद्धावस्था में भी आपका शरीर स्वस्थ, नीरोग और सुदृढ था । भारत के अनेक नगरों में भ्रमण करने, हिमगिरि गुहा और कन्दराओं में घूमने एवं सदा सेवाभाव में रत रहने से किसी प्रकार के कष्ट सहने की परवाह वे वृद्धावस्था में भी नहीं करते थे । मिताहार-विहार से आलस्य रहित होकर अपना अधिकांश समय भगवद्-ध्यान, साधु-सेवा और धर्म-प्रचार में लगाते थे । सैकड़ों नवयुवकों ने आपके दयालु स्वभाव और मनहरण-उपदेश से मदिरा-मांसादि अनेक दुर्व्यसनों को छोड़कर सद्गुणों को ग्रहण किया । खान-पान और आचार-विचार ठीक रखने की आप पहली शिक्षा देते थे । आपके अमृतमय वचनों में ही वह गुण था कि आचार भ्रष्ट और भक्ष्याभक्ष्य भोजी भी एकबार आपका सत्संग और सदुपदेश पाकर सदा के लिए सुधर जाता था । आपके चेहरे की आकृति में ही दुर्गुण-दुर्व्यसनों को निकाल देने और सद्गुण भर देने की शक्ति थी ।

सहनशीलता

एक बार आप नाथद्वारा दर्शन के लिए पधारे, साथ में डॉक्टर गंगाबख्शजी भी थे । दर्शन के समय मन्दिर में अधिक भीड़ होने से प्रबन्धकों ने बड़ी रोकथाम लगा रखी थी । झापटियों के कोड़ों से डरकर डॉक्टर गंगाबख्श तो उस समय लौट आये, पर आपने कोड़ों की कोई परवाह नहीं की । इतने में ही एक सज्जन इनके स्वरूप और सहनशीलता को देखकर इन्हें भीतर ले गये और आपने बड़े आनन्द से श्रीनाथजी के दर्शन किये । झापटिये ने यहाँ भी इनका पीछा नहीं छोड़ा, पर आप शान्तचित्त होकर दर्शन करते रहे । मन्दिर के मुखिया ने एक शील स्वभाव आनन्दमूर्ति महात्मा के साथ झापटिये का दुर्व्यवहार देखकर उसे बाहर निकलवा दिया और श्रीमहाराज से अपरिचित होने पर भी क्षमा माँगी और पीछे आपका पूर्ण परिचय मिलने पर गुसाईंजीमहाराज ने दो थाल महाप्रसाद के धर्मशाला में पहुँचाये और आपके आने-जाने के लिए मोटर का प्रबन्ध कर दिया; वहाँ से लौटते समय मोटर द्वारा रेल पर पहुँचाकर महाप्रसाद की दो टोकरियाँ भी साथ में और भेजी ।

एक बार पूर्णिमा के अवसर पर एक रामानन्दी साधु आपके स्थान पर आये और दो-तीन दिन निवास करके निन्दा सूचक बातें करते रहे । आपने उनकी बुरी आलोचनाओं पर ध्यान नहीं दिया, अपितु आदर-सत्कार पूर्ववत करते रहे । उनके चले जाने के पश्चात् आपके शिष्यों में से एक ने जो वहाँ उपस्थित थे, उसने प्रार्थना की कि महाराज ! वह साधु तो दिन भर निन्दा करता था, आपने जानबूझकर भी उसकी इतनी आवभगत क्यों की ? आपने हँसकर उत्तर दिया कि हमने एक साधु की सेवा करके अपना कर्तव्य पालन किया है, साधुओं की लीला जानना कठिन है ।

चमत्कार

यद्यपि श्रीमहाराज किसी प्रकार का चमत्कार दिखाने और अपनी प्रशंसा से कोसों दूर भागते थे, पर भक्त और शिष्यजनों को समय-समय पर ऐसी बातों का परिचय हो ही जाता है । प्रसंगवश कुछ वर्णन तो पहले ही हो चुका है, एक-दो बातें यहाँ भी प्रकट की जाती हैं –

अलवर निवासी ला. खैरातीलाल ने श्रीजी के महल की सीढ़ियों के पास श्रीनागाजी की बैठक पर एक मन्दिर बनवाया । उस मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ब्रजवासियों को प्रतिघर एक व्यक्ति का न्यौता दिया । उस समय तो ब्रजवासियों ने कोई आक्षेप नहीं उठाया, परन्तु भोजन के समय यह कहकर नट गये कि सब घर वालों को जिमाओ तो आयेंगे । भोजन इतना बना नहीं था जो सबको पर्याप्त होता । अब तो ला. खैरातीलाल असमंजस में पड़ गये । जब श्रीमहाराज को यह ज्ञात हुआ तो मुस्कुराकर कहने लगे – 'कोई चिन्ता की बात नहीं है ।' आपने गह्वरकुटी से पधारकर भोजन भण्डार के बाहर एक सफेद चादर लगवा दी और ब्रजवासियों को उनके सम्बन्धियों सहित भोजन के लिए निमन्त्रण भेज दिया । समस्त साधु-संतों और ब्रजवासियों ने आनन्दपूर्वक प्रसाद पा लिया परन्तु भण्डार में कोई कमी नहीं आई । जहाँ कहीं प्रसाद भेजना था, वहाँ भी भेज दिया गया । इस चमत्कार को देखकर सभी विस्मित हो गये । आपके शिष्य वर्ग ने आपके आशीर्वाद से बहुत लाभ उठाया । दामोदरजी रासधारी निःसंतान होने से बड़े दुःखी रहते थे, बाबू कान्तिचन्द्रजी की सन्तान जीवित नहीं रहती थी, डॉक्टर गंगाबख्शजी असाध्य रोगी हो गये थे और मुन्शी विष्णुलाल विक्षिप्त हो गये थे । इन भक्तजनों को श्रीमहाराज के आशीर्वाद से पूर्ण सन्तति लाभ और आरोग्यता प्राप्त हुई ।

पंडित नन्दकिशोरजी डाक विभाग से त्यागपत्र देकर बाल-बच्चों सहित एक बार आपकी सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि

परिवर्तन के बदले त्यागपत्र भूल से लिखा गया, आप ऐसी कृपा करें कि जिससे वह स्वीकार न हो । एक सप्ताह बाद ही उन्हें तार द्वारा भरतपुर के तबादले की सूचना मिली, जिसकी प्रसन्नता में पंडित नन्दकिशोर भेंट लेकर श्रीमहाराज की सेवा में उपस्थित हुए । आपने वह भेंट स्वीकार न करते हुए कहा कि हम घूस थोड़े ही लेते हैं ।

जिन दिनों अलवर में नगर निर्माण के क्रम में सड़कें निकाली जा रही थीं, पंडित नन्दकिशोरजी और उनके भ्राता पंडित गंगाबख्शजी का मकान सड़क में आ गया और उस पर झंडी लग गयी । उस समय श्रीमहाराज, डॉक्टर गंगाबख्शजी के सुपुत्र लाड़लीशरण के यज्ञोपवीत संस्कार में पधारे थे । पंडित गंगाबख्शजी श्रीमहाराज को अपने घर ले गये और मकान सड़क में न आने की इच्छा प्रकट की, तब आपने सान्त्वना दी कि तुम्हारा मकान नहीं टूटेगा और कुछ टूटे हुए भाग का पूरा मुआवजा मिलेगा । अन्त में ऐसा ही हुआ और उस सड़क का निकलना ही बन्द हो गया ।

इनके शिष्य बा. कन्हैयालाल बरसाना में किसी साधु के दिए हुए मनोरथ सिद्धि के ताबीज को बाँध लेने से ज्वर पीड़ित हो गये, चिन्ताजनक दशा को देखकर इनके भाई मास्टर प्रसादी लालजी ने यह समाचार श्रीमहाराज जी से कहा । आपने थोड़ा चरणामृत भेजा और धैर्य धारण करने का उपदेश दिया । रोगी ने अधिक व्याकुल होकर श्रीराधा-राधिकादि स्तोत्र पाठ आरम्भ किया । कहा जाता है कि गुरुकृपा से उस विह्वल दशा में युगल सरकार ने दर्शन दिए और ऐसा ज्ञात हुआ कि पहाड़ी के रास्ते गह्वरवन को ले जा रहे हैं, सिद्धि कुटी के नीचे वाले रासमण्डल पर रासलीला हो रही है, वहीं श्रीभण्डारीजी के शरीर में श्रीसिद्धेश्वरजी महाराज को लय होते देखा । उस ताबीज को तोड़ फेंकने की आज्ञा हुई, जिसके पालन से बिना किसी औषधि के केवल चरणामृत के पान से आराम हो गया ।

बा० कन्हैयालाल के सपत्नीक गुरु दीक्षा लेने पर उनके पिता अप्रसन्न थे और श्री महाराज के प्रति उनकी अश्रद्धा हो गयी थी, परन्तु इनके पिता की श्रद्धा भक्ति उस समय बढ़ गयी, जब बा० कन्हैया लाल पिता की असाध्य बीमारी के कारण देहली मैट्रिक की परीक्षा देने नहीं जा रहे थे और श्री गुरु महाराज ने रोगी को दर्शन देते हुए शुभ सूचक लड्डू प्रसादी दी और परीक्षा में भेजने का आदेश दिया । परिणाम यह हुआ कि पिता रोग मुक्त और पुत्र परीक्षोत्तीर्ण हो गये ।

विरक्त शिष्य

श्रीरामदासजी – मुरादाबाद के ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था, संवत् १९८० में गुरु दीक्षा ली, पाँच-छः वर्ष तक गह्वर कुटी में श्री ठाकुरजी की सेवा की । गुरु चरणों में इनकी पूरी निष्ठा थी । ये सदा भजन भाव में रत रहते थे, इनका निकुञ्ज वास हो चुका है ।

श्रीजगन्नाथदासजी – मैथिल ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ, संवत् १९८५ में गुरु दीक्षा ली । बड़े सौम्य स्वभाव और गुरु सेवी हैं, आजकल वृन्दावन वास करते हैं और समय-समय पर गुरु सेवा में भी उपस्थित होते रहते हैं ।

श्रीकुञ्जबिहारीदासजी – ये सनाढ्य ब्राह्मण के बालक थे । संवत् १९८८ में दीक्षा ली, भजन-कीर्तन के बड़े प्रेमी और रसिक थे, पाँच वर्ष हुए इनका निकुञ्ज वास हो गया ।

श्रीबिहारीदासजी – ये जिला गुरुदासपुर के रहने वाले सारस्वत ब्राह्मण हैं, १२ वर्ष हुए तब इन्होंने गुरु दीक्षा ली थी । इन दिनों सुनहरा की कदम्बखण्डी में रहते हैं; जो साधु-सेवी, विरक्त महात्मा और गुरु भक्त हैं ।

श्रीद्वारिकादासजी – इनका जाँगड़ा ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ; ब्रज में आकर दस - ग्यारह वर्ष हुए, तब गुरु चरणों की शरण ली, ये बड़े गुरु भक्त और साधु सेवी हैं ।

श्रीरामरक्षादासजी – इनका वर्णन पहले हो चुका है ।

श्रीनारायणदासजी – ये पहले सन्यासी थे और वेरी ग्राम जिला रोहतक में रहते थे । २५ वर्ष हुए, तब श्रीमहाराज अपने शिष्य सेठ भगवान् दास परशुराम के यहाँ गये थे, तब इन्होंने श्रीमहाराजजी से गुरु दीक्षा ली । ये बड़े गुरु भक्त और अच्छे महात्मा थे, इनका निकुञ्जवास हो चुका है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के मन्दिर

इधर अलवर राज्य में बान्सूर, राजगढ़ मालाखेड़ा और अलवर आडापारा में निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्द मन्दिर हैं । बान्सूर के रामबाग मन्दिर और दयाल वाली मन्दिर में महन्त राधिकदासजी और महन्त मदनदासजी ने अपनी सुयोग्यता और साधुपरायणता से मन्दिरों की उतरोत्तर शोभा बढ़ाई है । ये परोपकारशील और वैद्यक विद्या में कुशल हैं । महन्त राधिकादासजी ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है । दूर-दूर से असाध्य रोगी इनके यहाँ आते और प्रायः नीरोग होकर जाते हैं ।

आडापारा में महन्त भगवान् दासजी योग्य साधु हैं । ये जड़ी-बूटियों को पहचानते और उनको चिकित्सा के काम में लाते हैं ।
मालाखेड़ा में महन्त रघुनाथदासजी निम्बार्क सम्प्रदाय के सुयोग्य और विद्वान् साधु हैं ।

अब तृतीय खण्ड आरम्भ करने से पूर्व आचार्य प्रणामावली का उल्लेख किया जाता है ।

श्रीभगवद् हंसाय नमः ।
श्रीभगवन्नारदाय नमः ।
श्रीभगवन्निम्बार्काय नमः ।
श्रीविश्वाचार्य्याय नमः ।
श्रीविलासाचार्य्याय नमः ।
श्रीमाधवाचार्य्याय नमः ।
श्रीपद्माचार्य्याय नमः ।
श्रीगोपालचार्य्याय नमः ।
श्रीदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीभगवत्सनक, सनन्दन, सनत् कुमारेभ्योनमः ।
श्रीनिवासाचार्य्याय नमः ।
श्रीपुरुषोत्तमाचार्य्याय नमः ।
श्रीस्वरूपाचार्य्याय नमः ।
श्रीबलभद्राचार्य्याय नमः ।
श्रीश्यामाचार्य्याय नमः ।
श्रीकृपाचार्य्याय नमः ।
श्रीसुन्दरभट्टाय नमः ।
श्रीपद्मनाभभट्टाय नमः ।
श्रीरामचन्द्रभट्टाय नमः ।
श्रीकृष्णभट्टाय नमः ।
श्रीश्रवणभट्टाय नमः ।
श्रीमाधवभट्टाय नमः ।
श्रीगोपालभट्टाय नमः ।
श्रीगोपीनाथभट्टाय नमः ।
श्रीगाङ्गलभट्टाय नमः ।
श्रीभट्टाय नमः ।
श्रीस्वंभूदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीपरमानन्ददेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीमोहनदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीमदुपेन्द्र भट्टाय नमः ।
श्रीवामनभट्टाय नमः ।
श्रीपद्माकरभट्टाय नमः ।
श्रीभूरिभट्टाय नमः ।
श्रीश्यामभट्टाय नमः ।
श्रीबलभद्रभट्टाय नमः ।
श्रीकेशवभट्टाय नमः ।
श्री केशव काशमीरी भट्टाय नमः ।
श्री हरिव्यासदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीकन्हरदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीचतुरचिन्तामणि देवाचार्य्याय नमः ।
श्रीद्वारिकादेवाचार्य्याय नमः ।

तुलसाना गद्दी

श्रीगिरिधरदेवाचार्य्याय नमः ।
श्रीअमरदासाय नमः ।
श्रीगोविन्ददासाय नमः ।
श्रीरणछोड़दासाय नमः ।
श्रीरामदासाय नमः ।
श्रीहरिदासाय नमः ।
श्रीजमुनादासाय नमः ।
श्रीघनश्यामशरणदेवाय नमः ।
श्रीकिशोरीदासाय नमः ।

तृतीय खण्ड

गृहस्थी शिष्यों का वर्णन

मंगल पद

मंगल मूरति नयमानन्द ।
मंगल युगल किशोर हंस बपु, श्री सनकादिक आनन्द कन्द ॥१॥
मंगल श्री नारद मुनि मुनिवर, मंगल निम्ब दिवाकर चन्द ॥२॥
मंगल श्री ललितादि सखीगण, हंस वंश सन्तन के वृन्द ॥३॥
मंगल श्री वृन्दावन यमुना, तट वंशीवट निपट आनन्द ॥४॥
मंगल नाम जपत जय श्री भट, कटें अनेक जन्म के फन्द ॥५॥
मंगल मूरति नयमानन्द ॥

गुरु-वन्दना – (ज्ञानेश्वरी से उद्धृत)

अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अब मैं उत्तम प्रकार से हृदय की चौकी बनाकर उस पर श्री गुरु की पावड़ियों की प्रतिष्ठा करता हूँ । उन पर एकता रूपी अञ्जलि में सर्वेन्द्रिय रूपी फूलों की कलियाँ भर पुष्पाञ्जलि का अर्घ अर्पण करता हूँ तथा उनके अनन्य भावरूपी जल से शुद्ध की गयी गुरु निष्ठा के वासना रूपी चन्दन का लेप करता हूँ । उनके सुकुमार पदों में प्रेम रूपी स्वर्ण को शुद्ध करके तैयार किये हुए नूपुर पहनाता हूँ । उनकी उँगलियों में एक निष्ठता से जगमगाते हुए दृढ अनुराग रूपी छल्ले पहनाता हूँ । उनके मस्तक पर आनन्द रूपी सुगन्धित आठ पत्तों का खिला हुआ कमल चढ़ाता हूँ, जो मानो अष्ट सात्विक भावों से विकसित हुआ हो । उसके

सन्मुख अहंकार रूपी धूप जलाता हूँ तथा निरभिमान के दीप से उनकी आरती करता हूँ और निरन्तर ऐक्य भाव से उन्हें आलिंगन करता हूँ। श्रीगुरु के चरणों में अपनी काया और प्राण रूपी पावड़ियाँ पहनता हूँ और उनके चरणों पर से भोग और मोक्ष रूपी राई और नौन उतारता हूँ। इस प्रकार की गुरु चरणों की सेवा से मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा कि जिसकी प्राप्ति से सकल पुरुषार्थों का समुदाय मुझे पट्टाभिषेक करेगा।

पूज्य श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज (श्रीरणछोड़दासबाबा) के गृहस्थी शिष्य

पं. रामप्रसादजी – ये चिड़ावा राज जयपुर के रहने वाले बड़े कर्मेष्टि और विद्वान् ब्राह्मण थे, बरसाना के समीप प्रेम सरोवर की पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। बरसाना में श्रीजी के दर्शन और परिक्रमा को गह्वर वन में आने जाने से इनको श्री महाराज के दर्शन और सत्संग का लाभ मिला। इनकी श्रद्धा यहाँ तक बढ़ी कि श्री महाराज का चरण शरण प्राप्त करने में इन्होंने अपना कल्याण और गौरव समझा। इनकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं, जिनमें भक्त नामावली संस्कृत पद्य पुस्तक में गुरु महाराज की महिमा का वर्णन इस प्रकार लिखा है कि "मुझे उस समय बड़ा आश्चर्य और हर्ष हुआ, जब बिना किसी के लाकर दिए हुए श्रीजी की बीड़ी प्रसादी श्री गुरु महाराज के कर कमल में दिखायी दी और उन्होंने ऐसे स्नेह और दया भाव से मुझे दी कि जिसके सेवन से दसवें मास पुत्र सन्तति का लाभ हुआ।" पाठशाला की नौकरी छोड़ देने पर भी ये बहुधा ब्रज में निवास करके भजन भाव में रत रहते थे।

मास्टर प्रसादीलालजी – अलवर निवासी शिष्यों में आप ही सर्वप्रथम शिष्य हैं । इनका जन्म अलवर के कायस्थ कुल में ला० रामजीवनजी के गृह में सम्वत् १९३५ को हुआ था । अंग्रेजी – फारसी की शिक्षा प्राप्त करके स्कूल में मास्टर हो गये । महात्मा कृष्णदासजी अलवर निवासी से श्री सिद्धेश्वरजी महाराज की प्रशंसा सुनकर इन्होंने ब्रज की यात्रा की और वहाँ गुरु महाराज से दीक्षा लेकर वैष्णव धर्म का पालन किया । ये युगल सरकार के बड़े रसिक और प्रेमी हैं । सदा उनके ध्यान में मग्न रहते हैं और कविता भी करते हैं । अब पेंशन लेकर भजन भाव में ही समय बिताते हैं ।

ला० खैरातीलालजी – ये अलवर के कायस्थ ला० अङ्गन लालजी के पुत्र हैं । संवत् १९३९ में इनका जन्म हुआ था । संवत् १९६० में इन्होंने दीक्षा ली । इन्होंने बरसाना में नागाजी की बैठक पर कई हजार रुपया लगाकर एक मन्दिर बनवाया और उसकी सेवा पूजा के लिए ब्रज में भूमि खरीदकर ठाकुरजी को भेंट की । आप युगल सरकार के बड़े प्रेमी और रसिक हैं, रस भरी कविता भी करते हैं । पहले ये अलवर में राज सेवा करते थे । पीछे वृन्दावन और बरसाना के जयपुर मन्दिर के कामदार रहे । अब अपना अधिकांश समय ब्रज में निवास करके भजन भाव में बिताते हैं ।

ला० गौरीशंकरजी – ये थानागाजी के कायस्थ खानदान से थे, अलवर में राज सेवा करते थे और माई बाप के नाम से प्रसिद्ध थे; गुरु दीक्षा लेकर ये भजन भाव की ओर प्रवृत्त हुए । ये उत्सव के बड़े प्रेमी थे । घर-घर में जाकर लोगों को उत्सव के लिए प्रेरित किया करते थे । इनके निकुञ्जवास से उत्सव के कार्य में शिथिलता आ गयी है, ये रास के भी बड़े प्रेमी थे ।

मु० फतहलालजी – ये कायस्थ कुल से हैं । संवत् १९४४ में इनका जन्म हुआ था । संवत् १९६४ में इन्होंने गुरु दीक्षा ली । ऐसा कहते हैं कि शरणागत होने से ४ वर्ष पूर्व ही इनको स्वप्न में डाक द्वारा मन्त्र और कंठी प्राप्त हो चुकी थी । गुरु चरण कृपा से एक झूठे मुक़दमे से इनको छुटकारा मिला । एक बार इनकी स्त्री को पक्षाघात हो गया था । ये बड़े बेचैन थे । अकस्मात् रात्रि में एक वाणी सुनायी दी कि देह कष्ट है, रोग जाता रहेगा । ऐसा ही हुआ, यह इनकी अधिक गुरु निष्ठा का प्रमाण है । ये बड़े ही सीधे और सरल स्वभाव के हैं । उर्दू और हिंदी में पद रचना भी करते हैं ।

<u>ला० ब्रजवासीलालजी –</u> अलवर के कायस्थ कुल में संवत् १९३७ को इनका जन्म हुआ । दीक्षा लेने के पश्चात् शेख सद्दू की मान्यता, जो इनके कुल में चली आ रही थी, इन्होंने छोड़ दी और मदिरा-मांस का परित्याग कर दिया । इनकी स्त्री की यकायक देखने की शक्ति चली गयी । लोगों ने शेख सद्दू की उपासना की याद दिलाई, इन्होंने गुरु महाराज से निवेदन किया । उन्होंने शेख सद्दू की जगह श्रीठाकुरजी को खीर-पुवे का भोग लगाकर गरीबों को खिला देने को कहा । इन्होंने ऐसा ही किया, जिससे इनकी स्त्री को दिखने लगा । इनके भतीजे श्याम लाल को पसली का असाध्य रोग हो गया था । इन्होंने रोगी बालक के माता-पिता से मदिरा-मांस के परित्याग का प्रण कराया । महात्माजी की जड़ी दी, जिससे बालक निरोग हो गया । तीन-चार महीने तक ये अतिसार रोग से पीड़ित रहे । श्रीगुरुमहाराज ने स्वप्न में नीबू और कच्चे दूध के सेवन की आज्ञा दी, जिससे इनको लाभ हुआ । इन सब बातों में ये बड़े गुरुनिष्ठ हैं । राज में नौकरी करते हुए भी अपना अधिक समय अनुष्ठान और सेवा-पूजा में लगाते हैं । हिंदी-उर्दू में पद रचना भी करते हैं ।

<u>डॉक्टर गंगाबख्शजी</u> – अलवर के प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में संवत् १९४० को इनका जन्म हुआ । आपके पिता पं० रामसुखजी अलवर अस्पताल में कम्पाउडर थे, जो बड़े भगवद्भक्त, सरल स्वभाव और मितव्ययी थे । इन्होंने अपने इकलौते पुत्र को अलवर हाई स्कूल में पढ़ा कर डाक्टरी परीक्षा के लिए आगरा भेजा । वहाँ से पास कर आने पर अलवर में नियुक्ति हो गयी । आजकल के बहुधा अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोग, जिस प्रकार अपनी वेष-भूषा और आचार-विचार को छोड़ बैठते हैं, एक कुशल डाक्टर बनकर भी ऐसा इन्होंने नहीं किया, गुरु दीक्षा पाकर ब्राह्मणोचित कर्तव्यों की ओर अधिक ध्यान दिया । आपकी जन्मपत्री में गर्ग-संहिता से सन्तान का योग नहीं बताया जाता था । श्रीगुरु चरणों की कृपा से अब इनके दो पुत्र हैं । बड़े पुत्र लाड़लीशरण बी.ए. राजगढ़ स्कूल में मास्टर हैं और छोटे पुत्र श्यामा शरण औषधालय में कार्य करते हैं । एक बार लम्बे रोग से व्यथित होकर आपने जीवन की आशा छोड़ दी थी । गुरु महाराज का निकुंज वास हो चुका था । गुरुद्वारे से वर्तमान महात्माजी ने कहला भेजा – 'ध्यान रखो, कोई चिन्ता की बात नहीं है ।' तभी से आप स्वस्थ होने लगे । अब पेंशन लेकर अपना अधिकांश समय भजन, पूजन, सत्संग और सार्वजनिक कार्यों में व्यय करते हैं । इन्होंने चार धाम की यात्रा भी की है । दया भाव की शिक्षा, जो इन्होंने गुरु महाराज से पायी है, इसका एक छोटा सा उदाहरण लेखक के देखने में आया । होप सर्कस बाजार में एक कुतिया का बच्चा पड़ा हुआ चिल्ला रहा था । आने-जाने वाले लोग उसकी दर्द भरी चीख को सुनते और चले जाते थे । आपने रात को कमरे पर से उसकी आवाज सुनी । प्रातः काल एक आदमी के हाथ उस कुत्ते के बच्चे को पशु अस्पताल में लिवा ले गये । ताँगे के नीचे आ जाने से उस बच्चे के अधिक चोट लग गयी थी । अस्पताल के डॉक्टर ने

उसकी भरती खुराक के पाँच रुपये माँगे, जो तुरन्त भेज दिए गये। वहाँ उसकी अच्छी सँभाल हुई और चंगा होकर जब आपके पास लाया गया तो प्रसन्न होकर कहने लगे कि इसे किसी ऐसे को दे दो, जो इसे पाल सके।

पं. नन्दकिशोरजी – अलवर के प्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में संवत् १९४५ को इनका जन्म हुआ, इनके पिता पं० अयोध्या प्रसादजी ने इनको अंग्रेजी शिक्षा दिलाई; आगे चलकर ये पोस्ट मास्टर हो गये। धार्मिक विचारों की ओर इनकी पहले से ही प्रवृत्ति थी। कहा जाता है कि दीक्षा लेने से पूर्व ही स्वप्न में श्रीगुरु महाराज के दर्शन होने पर पूज्य चरणों में इनकी प्रीति हो गयी थी। आपकी गुरु भक्ति और अगाध प्रेम के दो स्मारक गुरुद्वारे में विद्यमान रहेंगे। एक तो इन्होंने श्रीजी के मन्दिर से गह्वर वन तक पक्की सड़क कई महीने तक बरसाना ठहरकर बनवाई। दूसरे श्री गुरु महाराज की समाधि पर संगमरमर की एक सुन्दर छतरी लगभग ढाई हजार रुपये की लागत से निर्माण करायी। अब आप नौकरी से विराम लेकर ब्रज में ही निवास करते हैं। भगवद् कथा और सत्संग के बड़े प्रेमी हैं। आपकी आँखों में बड़ी जल्दी प्रेमाश्रु आ जाते हैं। आप बड़े ही सरल स्वभाव के और मिष्ट भाषी हैं।

ला० चिरञ्जीलालजी – आप बानसूर के रहने वाले कायस्थ कुल से हैं। जब से आपने दीक्षा ली, भजन भाव की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति हो गयी। बहुत दिनों तक आप पटवारी रहे। अब इनके पुत्र पटवारी हैं और यह अपना अधिकांश समय ईश्वर ध्यान और गुरु चरणों में लगाते हैं। समय को व्यर्थ नहीं खोते हैं।

पं. नानगरामजी – ये अलवर के ब्राह्मणकुल में थे। प्लेग महामारी के समय ड्यूटी में जबकि ये कृष्णगढ़ में पटवारी थे, डॉक्टर गंगाबख्श जी से कुछ समय तक इनका सत्संग रहा, जिसका यह फल हुआ कि

इन्होंने गह्वर वन जाकर दीक्षा ली । पीछे ये कानूनगो हो गये थे । ये बड़े गुरु भक्त और भजनानन्दी थे ।

पं. लाड़लीशरणजी – आप डॉक्टर गंगा बख्शजी के ज्यष्ठ पुत्र हैं । संवत् १९७१ में आपका जन्म हुआ था । जन्म के समय ये न रोये, न दूध पिया । सात दिन पश्चात् मास्टर प्रसादीलालजी के यहाँ से गुरु महाराज की दी हुई जड़ी लाकर इन्हें पिलाई गयी, तब इन्होंने दूध पिया । आप ग्रेजुयेट हैं । बड़े सौम्य, सदाचारी और गुरु भक्त हैं ।

पूज्य श्रीकिशोरीदासजीमहाराज के गृहस्थी शिष्य

बा० कन्हैयालालजी – आप मास्टर प्रसादीलालजी के छोटे भ्राता और ला० बिहारीलालजी के दत्तक पुत्र हैं । इनका जन्म संवत् १९५८ में हुआ था, संवत् १९७४ में गुरु दीक्षा ली । इसके दो वर्ष पश्चात् इनके चित्त को वैराग्य हो गया । बरसाना पहुँचकर भेष देने के लिए गुरु महाराज से इन्होंने प्रार्थना की । उन्होंने असम्मति प्रकट करते हुए विलासगढ़ जाने की आज्ञा दी । वहाँ श्रीहंसदासजी महाराजजी ने इनके चित्त को शान्त किया और समझाया कि तुम्हारे भाग्य में गृहस्थी होना लिखा है, गुरु मन्त्र का जाप करते हुए इसी धर्म का पालन करो । तब ये घर को लौट आये । सन् १९३४ में जब ये अपने पुत्र गोपाल को कर्ण वेध और मुण्डन के लिए बरसाना ले गये तो वहाँ बालक असाध्य रोगी हो गया । श्रीगुरु महाराज ने धूनी दी और मोर पंख से झाड़ा दिया । बालक हँसकर उसी समय उनकी गोद में चला गया । कुल की रीति के अनुसार इनको सात सुहागिन स्त्रियाँ भी जिमानी थीं, पर निमन्त्रण पाँच को दिलाया । दूसरे दिन भोजन के समय याद आयी और यह सुनकर इन्हें आश्चर्य हुआ कि गुरु महाराज ने पहले से ही सात सुहागनों को निमन्त्रण दिया है । जब गह्वर वन के साधु-सन्त जीमने बैठे, उसी समय

साधुओं की एक मण्डली और आ गयी । गुरु महाराज ने उन सबको भी बैठा दिया । कन्हैयालालजी दुविधा में थे, पर गुरु महाराज ने ऐसी कृपा की कि उसी भोजन से सब तृप्त होकर जीम गये और भोजन बचा भी रहा । इन्हीं सब बातों से गुरु चरणों में इनकी बड़ी श्रद्धा है । आजकल ये स्टेट सर्जन ऑफिस में हेडक्लर्क हैं, ये विचारशील प्रकृति के हैं ।

बा० चन्द्रनाथजी – ये अलवर के बा० उमाचरणजी कायस्थ सब-इन्सपेक्टर पुलिस के पुत्र हैं । इनका जन्म संवत् १९५८ में हुआ, मार्च सन् १९१७ में गुरु दीक्षा ली । माँस-मदिरा सेवी परिवार में जन्म लेकर भी ये वैष्णव धर्म का पालन कर रहे हैं । इन्होंने माँस-मदिरा का सर्वथा परित्याग कर दिया है । ये बड़े सरल, सौम्य और भोले स्वभाव के हैं । आजकल इञ्जनेरी में एकाउन्टेन्ट हैं ।

डॉक्टर मनोहरलालजी – ये इस्माइलपुर के कायस्थ ला० रामजीदासजी नायब तहसीलदार के पुत्र हैं । इनका जन्म अक्टूबर सन् १९०१ में हुआ, सन् १९२५ में इन्होंने गुरु दीक्षा ली । अलवर में मैट्रिक करके डॉक्टरी परीक्षा में ये उत्तीर्ण हुए । इन दिनों ये अलवर जेल में डॉक्टर हैं । पागल जानवरों के काटने का इलाज भी इनके चार्ज में है, जिसकी इन्होंने मुख्य रूप से शिक्षा पास की है । इसके अतिरिक्त लेबोरेट्री (Laboratory) चिकित्सा में ये बड़े कुशल हैं, इनका हृदय सरल और स्वभाव दयालु है, दूसरे के दुःख-दर्द में सहायक हो जाते हैं, धार्मिक भावों की ओर प्रवृत्ति है ।

बा० कान्तिचन्द्रजी – बहरोड़ के प्रसिद्ध कायस्थ कुल में ला० धूमीलालजी के ये दत्तक पुत्र हैं । संवत् १९४७ में इनका जन्म हुआ, संवत् १९७८ में गुरु दीक्षा ली । उस समय इनको डॉक्टर गंगाबख्शजी अपने साथ ले गये थे, जबकि वह अपने पुत्र लाड़लीशरण की चाव

चढ़ाने गये थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्तकर ये अब राज सेवा करते हैं। बड़े विनम्र और शुद्ध स्वभाव के हैं। पद रचना भी करते हैं। जैसी गुरु चरणों में इनकी श्रद्धा है, वैसी ही गुरु महाराज की इन पर विशेष कृपा है। एक बार वर्षा काल में ये बरसाना गये। अँधेरी रात थी, मार्ग भूल गये, व्याकुल होकर इधर-उधर भटकने लगे। उस विह्वल और व्याकुल दशा में बिजली की चमक के साथ श्री गुरु महाराज ने इनको दर्शन देकर धैर्य दिया और फिर ये सकुशल गह्वर वन पहुँचे।

एक बार भादों मास में ये वृन्दावन गये और हंसदासजी की कुञ्ज में ठहरे। उस समय इनके चित्त में श्रीगुरु महाराज के दर्शन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। बरसाना जाना ही चाहते थे कि अचानक बाजार में गुरु महाराज ने इन्हें दर्शन दिए और कई दिन वृन्दावन ठहरकर इन्हें सन्तुष्ट किया।

एक समय वृन्दावन में श्रीगुरु महाराज ने इनको बरसाना की तीजों के झूलनोत्सव देखने की आज्ञा दी। ये कोसी कलाँ का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गये। छाता स्टेशन पर, जहाँ से बरसाना समीप है, गाड़ी रुकती ही नहीं थी और कोसी तक जाने में उत्सव का समय निकल जाता था। गुरु कृपा से छाता स्टेशन पर गाड़ी किसी कारण से आकस्मिक ठहर गयी। ये गाड़ी से उतरकर चलने लगे तो स्टेशन मास्टर ने रोकना चाहा, पर गार्ड ने कह दिया कि जाने दो, कोई हर्ज नहीं है। इस प्रकार ठीक समय पर ये उत्सव में सम्मिलित हो गये।

बा० मुकुटबिहारीलालजी – मुन्शी कन्हैयालालजी कायस्थ के ये पुत्र हैं। संवत् १९८७ में इन्होंने श्रीगुरु चरण शरण प्राप्त की। पहले इनको चित्त भ्रम की शिकायत थी। विवाह भी इनका नहीं हुआ था। गुरु कृपा से ये नीरोग हो गये और विवाह के पश्चात् पुत्र सन्तति का

लाभ भी हो गया । ये मैट्रिक पास हैं और बिजली घर में कार्यरत हैं, सज्जन और सरल स्वभाव के हैं ।

हमारी प्रार्थना

श्रीगुरु चरणकमलों पे, सभी बलिहार हो जावें ।
चरणामृत को नित पी-पी, सदा शरशार हो जावें ॥
चिरायु हों श्री गुरुवर, चिरायु सर्व परिकर हों ।
रहे आनन्द में श्री गुरु, दुआ यह मिलके नित गावें ॥
बढ़े सौभाग्य इनका और, अटल हो धाम बरसाना ।
बिराजें आप गह्वर में, सदा हम देख सुख पावें ॥
विनय हम बालकों की, रावरे चरणों में बस यह है ।
यों ही हम प्रेम से मिलके, तुम्हारे गान गुण गावें ॥
पड़े बाधा कोई इसमें, न कोई भाव में अड़चन ।
अशुभ गर बासना आवें, तो वह शुभ में बदल जावें ।

(रचयिता – बा. कान्तिचन्द्र)

(श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान से प्रकाशित कुछ सारगर्भित तथ्य)

अन्तरंग लीलास्थली 'श्रीगह्वरवाटिका'

बीस कोस वृन्दाविपिन, पुर वृषभानु उदार ।
तामें गह्वर वाटिका, जामें नित्य विहार ॥

प्राचीन रसिकाचार्यों ने बताया है कि वृन्दावन बीस कोस तक विस्तृत है; इस पैमाने के अनुसार वृन्दावन साठ किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैला है । केवल छोटा-सा शहर वृन्दावन नहीं है, जैसा कि आजकल के मनगढ़न्त लोगों ने मान लिया और जनता को दिग्भ्रमित कर दिया

है । रसिकाचार्यों के अनुसार बीस कोस के वृन्दावन में वृषभानुपुर अर्थात् बरसाना सबसे अधिक उदार है क्योंकि परमोदार वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकारानी का यह प्राकट्य एवं नित्य क्रीड़ास्थल है । इसी बरसाने में गह्वरवाटिका अथवा गह्वरवन है, जहाँ प्रिया-प्रियतम का नित्य विहार होता है । ललित सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य एवं ललिता महासखी के अंश से उत्पन्न अनन्य बरसानानिष्ठ श्रीवंशीअलीजीमहाराज ने अपने द्वारा रचित बहुमूल्य ग्रन्थ 'श्रीवृषभानुपुर शतक' में सौ श्लोकों में बरसाना, गह्वरवन और यहाँ श्यामा-श्याम की विशुद्ध प्रेमलीला का अद्भुत शैली में वर्णन किया है, वे लिखते हैं –

यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलिविलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥

(श्रीवृषभानुपुर शतक – ७)

जिस बरसाने में 'गह्वरवन' नामक सुन्दर वन है, जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को भी मोहित करने वाले युगल राधा-माधव के मन का भी हरण करने वाला है । अपने नित्य केलि विलास के द्वारा स्वयं श्रीराधारानी ने इस वन का निर्माण किया है ।

श्रीराधिकामहारानी के कर-कमलों द्वारा निर्मित होने के कारण यह ब्रज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वन है । इस वन के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीवृषभानुपुरशतक में श्रीवंशी अली जी ने लिखा है –

गुंजद्भृंग कुलाम्बुजातमुकुलं गायत्सुपुंस्कोकिलं,
नृत्यत्केकिकलं समीरविचलत् – पत्र प्रभाभासितम् ।
नानाचंद्रविनिंदिदीप्तिमदलं राजन्मणींद्रस्थलं,
वाद्यं निर्झरभेरिका कलकलं ध्यायामिकुंजोत्तमम् ॥९॥

लाड़ली-लाल के इस दिव्य विहार विपिन में सदैव ही त्रिविध रूप में संगीत सुधा का विलक्षण रस प्रवाहित होता रहता है । जैसा कि संगीतशास्त्र की परिभाषा देते हुए बताया गया है –

'गीतं वाद्यम् तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।'

गीत, वाद्य एवं नृत्य का सम्मिलन ही संगीत है । इस परिभाषा के अनुसार संगीत की यह त्रिविध लहरी सदा-सर्वदा ही गह्वरवन में प्रवाहित होती रहती है । उदाहरण के लिए शास्त्रीय संगीत में गान के पहले खरज की स्थापना की जाती है तो गह्वरवन में सरोवर में उत्पन्न कमल की पंखुड़ियों पर विराजित दिव्य भ्रमर अपने अद्भुत गुंजार के द्वारा खरज की स्थापना करते हैं । खरज के पश्चात् नर कोकिल इस मनोरम वन में अत्यन्त सुमधुर गान प्रस्तुत करते हैं । गान के उपरान्त यहाँ उपस्थित मयूरगण अपने पंख खोलकर प्रिया-प्रियतम को रिझाने के लिए मनमोहक नृत्य आरम्भ कर देते हैं । उस समय शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु के वेग से वृक्षों के पत्ते हिलने लगते हैं । जिस प्रकार रंगमंच पर नृत्य कला की प्रस्तुति के समय विभिन्न रंगों के प्रकाश किरणों के द्वारा नृत्य के भावों को प्रदर्शित किया जाता है, उसी प्रकार गह्वरवन के दिव्य मणिमय पल्लव मयूरों की अलौकिक नृत्य कला को और अधिक रमणीय बनाने के लिए विभिन्न रंगों की आभा का प्रसार (फोकस) करते हैं । अनेक चन्द्रमाओं की शोभा को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त यहाँ के चिन्मय पत्र व पुष्प दल हैं । श्रेष्ठ मणियों से सम्पूर्ण गह्वरवन के स्थल अलंकृत हैं । 'गायन और नृत्य' कला के प्रदर्शन के साथ ही कलकल करता हुआ सदा प्रवाहित होने वाला अत्यधिक सरस 'झरना' यहाँ दिव्य वाद्य की कर्णप्रिय ध्वनि उत्पन्न करता है । वंशी अलीजी कहते हैं कि ऐसे उत्तम कुञ्जों वाले गह्वरवन का मैं ध्यान करता हूँ ।

गह्वरवन से प्रार्थना करते हुए श्रीवंशीअलीजी कहते हैं –

त्वं वनराज ! किशोरीचरण द्वन्द्व ममापि दर्शय भोः ।
श्रीमच्छयामलमूर्तेर्हृदियत्तापं समुद्धरति ॥५२॥

हे वनराज ! किशोरी श्रीराधारानी के युगल चरणों का दर्शन मुझे भी करा दो, जो चरण घनश्याम श्रीकृष्ण के हृदय में उत्पन्न विरह जनित ताप को हरण करने वाले हैं ।

निम्नलिखित श्लोकों में श्रीवंशी अलीजी अभिलाषा करते हैं कि मेरा मन सदा ही मेरे प्राण जीवन धन श्रीश्यामा-श्याम के नित्य विहार स्थल गह्वर वन में ही रमण करे ।

विचित्र वल्लीतरु राजिराजिते, विचित्रलीलामयवाः सभाजिते ।
विदग्धराधाधवभाव पूजिते, प्रियाङ्घ्रिसल्लाञ्छनलाञ्छिताजिरे ॥९०॥

जो अद्भुत लता-पताओं एवं वृक्षों की पंक्तियों से सुशोभित है, प्रिया-प्रियतम की अद्भुत लीलाचिह्नों से जो वन सत्कृत हो रहा है, परम रसमयी लीलाओं में प्रवीण श्रीराधावल्लभ की भाव-भङ्गिमाओं से जो पूजित है तथा कृष्णप्रिया स्वामिनी श्रीराधाजू के चरणचिह्नों से जिसका प्राङ्गण अलङ्कृत हो रहा है, ऐसे श्रीगह्वरवन में मेरा मन सदा ही रम जाए ।

सखीजनोद्गीत वधूगुणोत्करे, सुवल्गुकी वादनशब्दशब्दिते ।
सामश्रुते श्रीललिताङ्घ्रिलाञ्छिते, श्रीगह्वरे मे रमतां मनः सदा ॥९१॥

जिस गह्वरवन में सखियों के द्वारा प्रिया श्रीराधिकाजी के गुण-समूह का गान किया जाता है, सुन्दर वीणा की मधुर ध्वनि से जो झङ्कृत हो रहा है, सुन्दर संगीत अथवा सामवेद की ध्वनि जिसमें सुनाई दे रही है, जो ललिता सखी के चरणचिह्नों अथवा प्रिया-प्रियतम के ललित

(मनोरम) चरणचिह्नों से विभूषित हो रहा है, ऐसे श्रीगह्वरवन में मेरा मन निरन्तर रमण करे ।

श्रीवृषभानुपुर शतक के श्लोक – ७३ में ग्रन्थकार द्वारा श्रीजी को 'गह्वरवासदात्री' अर्थात् गह्वरवन के देव दुर्लभ वास की देने वाली कहा गया है –

'लावण्य रूपामृतसारपात्री दृश्या कदा गह्वरवासदात्री ।'

जो असमोर्ध्व लावण्य (सौन्दर्य) रूप अमृत सार की एकमात्र पात्र हैं तथा जो गह्वरवन में वास देने वाली हैं, ऐसी श्रीराधिकारानी को मैं कब देखूँगी ?

गह्वर वन के वास कौ, आस करें शिव शेष ।
ह्याँ की महिमा को कहै, जहाँ स्याम धरें सखी वेष ॥

अन्य रसिक महापुरुषों ने भी कहा है कि गह्वरवन के वास की आशा तो भगवान् शिव और शेष भगवान् भी करते हैं । इस दिव्य वन की अचिन्त्य महिमा का वर्णन कौन कर सकता है, जहाँ प्रियाजी के दर्शन के लिए श्यामसुन्दर भी सखी वेष धारण करते हैं ।

श्रीराधारानी की अद्भुत महिमा से परिपूर्ण ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि में भी ग्रन्थकार ने कई श्लोकों में 'गह्वरवन' का उल्लेख किया है । 'श्रीराधासुधानिधि' जो श्रीराधा की अनेक लीलाओं का सागर है, जिसमें उनकी विविध छवियाँ स्वकीया-परकीया की प्रस्तुति की गयी है । यद्यपि साम्प्रदायिक आग्रह से रस- ग्रन्थ 'श्रीराधासुधानिधि' को अपनी पद्धति से सीमित करने का प्रयास किया गया है किन्तु संतजन सभी पद्धतियों का सम्मान करके अपने आस्वादन में लग जाते हैं । खण्डन का बात-बतंगड़, क्षुद्र नीरस कलुषित लोग ही किया करते हैं । राधासुधानिधि में भी गह्वरवन की मिलन पद्धति की छवि का वर्णन आता है ।

(राधासुधानिधि – १७३) वियोग तो दूर रहा, वियोगाभास से ही कोटि-कोटि प्रलयाग्नि की ज्वाला, युगल को बाहर व भीतर अनुभव होने लग जाती है । ऐसा गाढ़ प्रेम है । जहाँ अति सूक्ष्म विरह की कल्पना भी इतनी तीव्रतम पिपासा जगाती रहती है । इसीलिए अंक में स्थित, मिलित अवस्था में विरहानुभूति होने लग जाती है । (श्रीराधासुधानिधि – ४६) 'वृन्दारण्य' से तात्पर्य पञ्च योजनात्मक वृन्दावन से है, जिसमें श्रीगह्वरवन भी आता है ।

यन्नारदाजेशशुकैरगम्यं वृन्दावने वञ्जुलमंजु कुञ्जे।
तत्कृष्णचेतोहरणैकविज्ञमत्रास्ति किंचित्परमंरहस्यम्॥

(श्रीराधासुधानिधि - २३८)

इस श्लोक में 'वञ्जुलमञ्जुकुञ्ज' के रूप में गह्वरवन को ही इंगित करते हुए कहा गया है कि इसी श्रीवन में नारद, ब्रह्मा, शंकर और शुकदेव आदि को भी अगम्य, श्रीकृष्ण के चित्त को हरण करने वाला रहस्य (श्रीराधा) विद्यमान है ।

परम पूज्य अनन्य श्रीगह्वरवननिष्ठ सन्त श्रीरमेशबाबा महाराज इसी श्लोक की व्याख्या में कहते हैं कि 'श्रीगह्वरवन' तो इस श्लोक के प्रमाण के अनुसार श्रीराधासुधानिधि का भी सार है, 'ब्रजभूमि' सुगन्धित पुष्प की तरह है तो उसका मकरन्द 'गह्वरवन' है ।(श्रीगह्वरवन धाम का साक्षात् स्वरूप परम पूज्य श्रीबाबामहाराज की रसमयी आराधना से प्रकट हो गया है, जहाँ श्रीजी की सहचरी स्वरूपा दिव्य 'बाल-आराधिकाएँ' नित्य 'नृत्य-गान' करती हैं, जिसे ब्रजवासीजन 'गह्वरवन का महारास' कहते हैं ।)

श्रीगह्वरवन की लीलाओं का गान सभी रसिकों ने किया है, जैसे – कलिकाल में श्री प्रिया-प्रियतम के नित्य विहार के प्राकट्यकर्ता

अनन्य नृपति रसिक सम्राट स्वामीहरिदासजीमहाराज ने 'केलिमाल' में गह्वरवन की अद्भुत महिमा का गायन किया है । उनके इष्ट कुञ्जबिहारी 'श्रीबाँकेबिहारीजी' अपनी प्राणप्रिया श्रीराधारानी से गह्वरवन में चलने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

प्यारी जू आगे चलि आगे चलि गह्वर वन भीतर जहाँ बोलै कोइल री ॥
अति ही विचित्र फूल पत्रनि की सेज्या रचीरुचिर सँवारी तहाँ तूब सोइल री ।
छिन छिन पल पल तेरीए कहानी तुव मग जोइल री ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम कहत छबीलौ काम रस भोइल री ॥

हे प्यारी जू ! गह्वरवन के भीतर चलिए, जहाँ कोकिलायें अत्यन्त मधुर कंठ से आपकी सरस महिमा का गान कर रही हैं । मैंने आपके शयन के लिए इस वन के भीतर अपने ही हाथों से अत्यन्त ही अद्भुत पुष्प-पत्रों की शय्या का निर्माण किया है, आप उस पर अत्यन्त सुखपूर्वक विश्राम कीजिये ।

अनन्य श्रीराधाचरणप्रधान उपासक, परम राधारसिक श्रीहितहरिवंशमहाप्रभुजी ने हितचतुरासीजी में 'बरसाने' के चार स्थलों को प्रिया-प्रियतम के नित्य विहार का केंद्र-बिन्दु माना है, उनमें गह्वरवन भी एक है –

देखि सखी राधा पिय केलि ।
ये दोउ खोरि खिरक गिरि गह्वर विहरत कुंवर कंठ भुज मेलि ॥

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख रस ग्रन्थ महावाणीजी में भी गह्वरवन का वर्णन है –

भूलि परी गह्वरवन में जहाँ सखी न कोउ साथ ।
सोहिलो सुख गहर गह्वर भरयौ भाव अनन्त ॥

(महावाणी सहेली, उत्साह सुख ४१/६४ तथा सोहिलो ३९ में)

विशाखा सखी के अवतार परम रसिकाचार्य श्री हरिरामव्यासजी ने भी गह्वरवन का वर्णन अपने वाणी-ग्रन्थ में किया है –

सदा वृंदावन सबकी आदि ।
गिरि गह्वर वीथी रत रन में कालिन्दी सलिलादि ॥

(व्यास वाणी वृ. म. प. सं. ४२)

वृहन्नारद पुराण में गह्वरवन के प्रार्थना-मन्त्र का इस प्रकार वर्णन है –

गहवराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने ।
गोपीरमणसौख्याय वनाय च नमो नमः ॥

(वृहन्नारदीय)

"सुरम्य गह्वरवन", श्रीकृष्ण का लीला स्थान, गोपिकाओं के साथ रमण करने वाले श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए ही जो विराजमान है, आपको प्रणाम है । 'गह्वरवन' नित्य विहार का स्थल माना गया है । नित्यविहार का तात्पर्य – जहाँ एक क्षण के लिए भी वियोग नहीं है । स्वकीया एवं परकीया दोनों से भिन्न यह उपासना पद्धति है । स्वकीया में पितृ गृह गमन से वियोग का अनुभव होता है और परकीया में संयोग का अवसर भी कम ही मिलता है और वह भी अनेक बाधाओं के बाद । वहाँ बाधाओं को प्रेम की कसौटी या प्रेम की तीव्रता का मापदण्ड माना जाता है । स्वकीया वाले श्रीराधा के मायिक व कल्पित पति के नाम से ही अरुचि रखते हैं । वे परकीयत्व का किंचित् मात्र संस्कार भी अपनी अनन्यता में स्वीकार नहीं करते, इसीलिए श्रीगह्वरवन में रसिकों ने वियोगशून्य नित्य मिलन की उपासना स्वानुभव से लिखी है, जिसमें युगल इतने सुकुमार हैं कि एक क्षण का भी वियोग असह्य है किन्तु वियोग के बिना संयोग पुष्ट नहीं होता है ।

यह भी एक सत्य है । इसलिए यहाँ अति सूक्ष्म विरह भी गाया गया है । वह विरह, मिलन की अवस्था में भी निरन्तर पिपासा बढ़ाता रहता है । जहाँ विरह व मिलन दोनों परम रसमय हैं; यही प्रेम वैचित्री है, जिसका वर्णन श्रीवृषभानुपुरशतक के श्लोक ११, १२ में श्रीवंशीअलीजी ने किया है कि जिस गह्वरवन में, राधामाधव के लिए कोटि-कोटि युग भी आधे क्षण के समान नित्य 'संयोग में, प्रेम-पिपासा में' व्यतीत हो जाते हैं ।

गहवरि गिरि सांकरी गली ।
कछु न सँभारि देह सुधि बिसरी,
मिलि औचक वृषभानु लली ॥

(श्रीनागरीदासजी)

रसिकों ने गाया है –

गह्वर श्रीराधा को घर है ।
ताकी देहु सोहनी मैं, यही चाह मो उर अंतर है ॥

गह्वरवन तो राधारानी का घर ही है । अतः यहाँ आने पर यही भाव रखना चाहिए कि हम श्रीराधारानी के निज घर में प्रवेश कर रहे हैं, यहाँ हमें कोई भी सेवा (सोहनी इत्यादि की) मिल जाए ...। बड़े-बड़े रसिक भक्तजनों ने 'श्रीगह्वरवनवास व सेवा-आराधना' करने की ही याचना की तथा इसी अन्तरंग लीलास्थली की महिमा गुणगान किया –

प्यारी तेरो भलो बनो बरसानो ।
गहवर वन और खोर साँकरी, संतन्ह को मनमानो ।
'नागरिदास' वास बरसानो, भानोमति जगजानो ॥

तलहटी बरसाने की रहिये ।
गहवर वन की बैठ लतन में, राधा-राधा गइये ।
सदा सरवदा पर्वत ऊपर, नित प्रति चढ़ कर जइये ।
'नागरिदास' वास बरसानो, कुँवरि दिये सों पइये ॥

(श्रीनागरीदासजी)

श्रीगह्वरवाटिका के सुमन

श्रीकिशोरीजू के स्नेह-प्रेमरस में स्वकर-कमल से निर्मित, पोषित, पल्लवित, सुसज्जित 'श्रीगह्वरवन' के सुमन जिन्हें श्रीकृपा-करुणा मिली हुई है –

श्रीकिशोरी अलीजी

श्रीलाड़लजी द्वारा अधिकाधिक स्नेह प्राप्त कर इस पुष्प (किशोरीअली) ने आजीवन श्रीधाम 'गह्वरवन' को नहीं छोड़ा । संयोग से आपकी अर्धाङ्गिनी का नाम भी 'किशोरी' था; किशोरी के धामगमनोपरान्त विरह-व्यथा से गह्वरवन में व्याकुल हो, हा किशोरी ! प्राणप्रिय किशोरी !! पुकारे जाने पर साक्षात् श्रीकिशोरीजी की कृपा से दर्शन प्राप्त हुए व सरस श्रीभक्ति का आविर्भाव हुआ ।

श्रीगुलाबसखी

आपको तो श्रीप्रियाजी ने सखीभावभावित नाम भी पहले ही प्रदान कर दिया । आप श्रीजी की वाटिका के गुलाब सुमन हैं । यवन जाति में जन्म लेकर, आपने अपनी आराध्या श्रीजी की एकाभक्ति सुवास सर्वत्र प्रसारित की । आपकी पुत्री का नाम भी 'राधा' था, जो नन्दगाँव की वधू बनी । एक बार ग्रीष्म के दिनों में पुत्री से मिलने के

लिए चले, तो मार्ग के मध्य तृषा से व्याकुल हो उठे, मध्य जंगल में पानी कहाँ से प्राप्त हो ? तब स्वयं श्रीजी (गुलाब सखी की पुत्री 'राधा' का रूप-वेष धारण कर) अपने इस पुष्प को जल लेकर सिञ्चित करने आईं ।

श्रीजी – "बाबा ! लो जल पी लो"

गुलाब सखी – "पुत्री राधा ! तू यहाँ कैसे आई ? तुझे कैसे पता कि मैं यहाँ जल के बिना व्याकुल हूँ ।"

जो 'वाटिका' श्रीजी के कर सम्पुटों से ही बनी, पली-बढ़ी; क्या श्रीजी अपनी उस वाटिका के एक भी पुष्प को बिना जल के वृक्ष से गिरने को विवश करतीं ? नहीं, कभी नहीं । वो तो दयार्द्रा हैं, अतः ऐसा सम्भव नहीं था । पुत्री राधा के घर पहुँचने पर पता चला कि वह पुत्री राधा नहीं, प्रत्युत आराध्या 'राधा' थीं । श्रीजी-मन्दिर की सीढ़ियों को, अपने नूर (दाढ़ी) से मार्जित करना, प्रतिदिन सारंगी की मधुर ध्वनि श्रीजी को सुनाना, बस यही आपका दैनिक कार्य था । शरीरान्त के बाद भी आपको ब्रजवासियों ने अपनी दैनिक सेवा में संलग्न देखा अर्थात् नित्य लीला में आपको अपनी सेवा के लिए श्रीजी ने स्वीकार कर लिया ।

पं. श्रीहरिश्चन्द्रजी महाराज

आप इस गह्वर-वाटिका के सुविकसित पुष्प थे । आपकी भक्ति की सुगन्ध आज भी अमर है, जो जन-समुदाय के लिए परम कल्याणकारी है ।

पं. हरिश्चन्द्रजी महाराज गह्वरवन निवासी पुष्टिमार्गीय महापुरुष थे । आपका उत्कट वैराग्यमय ऐकान्तिक जीवन श्रीजी में अनन्य निष्ठा से युक्त था । आप सारी रात विप्रलम्भ (वियोग) की भावना में जागते रहते थे, कभी रात को सोये नहीं । "**डासत ही गई बीत निसा, कबहूँ न**

नाथ नींद भर सोयो ।" तुलसीदासजी की विनयपत्रिका की ये पंक्ति ही आपका जीवन थी । जो एक बार भी नींद भर नहीं सोया, वही यथार्थ प्रेमी है, यह स्थिति पं. हरिश्चन्द्रमहाराजजी के जीवन में दृष्टिगोचर हुई । आप सारी रात जागते थे और खिड़की पर बैठकर गह्वरवन की कुंजों को देखा करते थे । एक बार आपके पास काशी से बहुत बड़े विद्वान आए । पं. हरिश्चन्द्रजी ने कहा कि कुछ कृष्ण- कथा सुनाइये । वह लगे बोलने कि उद्धव जी से ऐसा हुआ, गोपियों ने यह कहा, वह कहा, काफी देर बोलते रहे परन्तु पण्डितजी कुछ नहीं बोले । काशी से आए हुए महाराज बोले – "पण्डितजी ! आप तो कुछ बोले ही नहीं, कि हमने कैसा सुनाया यह वृत्तान्त ।"

पण्डितजी बोले कि हमारी समझ में तो एक ही बात आती है कि गोपियाँ भी कुछ बोली नहीं थीं, 'वे जो कुछ बोलीं' वह बोलना नहीं, वस्तुतः प्रेमालाप था ।

भ्रमरगीत में आता है कि गोपियाँ क्या कह रही हैं, उन्हें स्वयं कुछ पता नहीं । गौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्यों का भी यही कथन है – भाव, प्रेम, मान, प्रणय, राग-अनुराग, महाभाव, मोहनाख्य, मादनाख्य भाव और चित्रजल्प, संजल्प, दिव्योन्माद आदि प्रेम की अवस्थाओं में स्वतः निकले हैं । वहाँ श्रीकृष्ण के प्रति असूया (दोष दृष्टि) है श्रीकृष्ण के प्रति ईर्ष्या है, उपहास है, व्यंग भी है । कहती हैं – गोप्युवाच –

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

(श्रीभागवतजी १०/४७/१२)

"भँवरे ! तू उस धूर्त का भाई है।" कृष्ण को कितव (कपटी) कहती हैं । यह उनकी सहज बोलन है, जानबूझकर कुछ नहीं कहा गया ।

"हमारे पाँव को मत छू, निर्लज्ज ! हमारी सौत कुब्जा आदि के वक्षस्थल पर जो माला है और वह माला वक्षस्थल से जब टकराती है तो स्तनों पर लगा कुमकुम उस पर लग जाता है, तू उस माला पर बैठता है तो तेरी मूछों में वो कुमकुम लग जाता है और उसी कुमकुम को लगाकर चरण छूने तू आया है ।

चला जा, भाग जा !!

तेरा स्वामी भी निर्लज्ज है जो यदुवंशियों की सभा में जाता है और उन मानिनियों के वक्ष स्थल पर जो कुमकुम है उससे सनी माला को धारण करता है।" यह परिहास की बात है कि जैसे तेरा स्वामी निर्लज्ज है वैसे ही तू भी है, चला जा ...। कृष्ण के प्रति असूया, दोषदृष्टि, व्यंग आदि क्या नहीं है उनका ?

गोपियाँ दिव्योन्माद की अवस्था में बोल रही थीं । उद्धवजी ने जो देखा, उसका प्रभाव था और जो सुना, उसका प्रभाव नहीं था ।श्रीकृष्ण के प्रेम में रँगकर रसमत्त हो गईं थीं वे गोपिकाएँ । जैसे कोई वारुणी पी ले तो होश नहीं रहता ...

प्रेमियों की स्थिति –

न जाने कौन सी धुन में तेरा दीवाना आता है ।
उड़ाता खाक सर पे झूमता मस्ताना आता है ॥
सुराही कहकहा उठी प्याला मुस्कुराता है ।
हजारों उँगलियाँ उठती तेरा दीवाना जाता है ॥

प्रेमियों की मस्ती अलग होती है –

मेरी जंजीरे पाक से आवाज आती है ।
हटो दीवाना आता है हटो दीवाना आता है ॥

तो पं. हरिश्चन्द्रजी ने कहा कि गोपियों ने जो कहा, वह उद्धवजी ने देखा ...वह रस में डूबन...वह प्रेम की मस्ती ... उनको सुध-बुध नहीं है कि किस तरह से पड़ी हैं, कुछ पता नहीं है - न देह का, न वस्त्रों का । कृष्णप्रेम की मस्ती में ऐसा ही होता है ।

इस गह्वरवन में आज भी इन सब महापुरुषों के भक्ति की महक साक्षात् दर्शनीय है ।

श्रीमौनीजी महाराज

श्रीमौनीजीमहाराज के शरीर से प्रत्यक्ष अग्नि प्रकट हुई । लताओं-पताओं के गिरे हुए पत्तों को घोल कर पी जाते थे और जीवन-पर्यन्त यहाँ गह्वरवन में अनन्य भजन किया । अति विलक्षण उच्च कोटि के असंग्रही महात्मा श्रीमौनीजीमहाराज इस गह्वरवन के एक दुर्लभ पुष्प थे ।

श्रीप्रियाशरणजी महाराज

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, श्रीयुगल-रसतत्व का विस्तृत, अगोचर, असमोर्ध्व रसमय निगूढ़ात्मक ग्रन्थ 'श्रीमहावाणी' का विवेचन करने वाले एवं प्राकट्यकर्ता अनन्त श्रीसम्पन्न 'श्रीश्रीप्रियाशरणजीमहाराज' से श्रीरमेशबाबामहाराज ने शिष्यत्व ग्रहण किया । आपकी वाङ्मय प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि जब आप गहनतम रसयुत विषयों पर बोलने लगते तो बड़े-बड़े एकान्त साधनरत् विद्वज्जन अपनी कुटिया को त्यागकर कर्णों को

श्रवणानन्द देने को बाध्य हो जाते । 'प्रेम सरोवर' की धरा को पावन किया श्रीजी के अनन्य भक्त पूज्य श्रीसद्गुरुदेव (श्रीरमेशबाबामहाराज के परम गुरु) श्रीप्रियाशरणजीमहाराज ने, जिन्होंने अपनी सौ वर्ष से अधिक आयु का अधिकांश भाग यहीं (श्रीधाम-सन्निधि में) श्रीजी के भजन-ध्यान में सम्पूर्ण किया ।

गह्वरवन-प्रकाशक 'बाबाश्री'

ब्रज-संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक, उद्धारक परमपूज्य पद्मश्री श्रीरमेशबाबामहाराज; जिनकी कृपा से ब्रज के वन-पर्वत-कुण्डों का संरक्षण-संवर्द्धन हुआ, ३५ हजार से अधिक गाँवों में निष्काम भाव से श्रीहरिनाम-संकीर्तन का प्रचार-प्रसार हुआ व भागवत-कथाओं के माध्यम से सतत् हो रहा है । १५ हजार से अधिक ब्रजयात्रियों की निःशुल्क 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' प्रतिवर्ष चलती है, ६५ हजार से अधिक गौवंश का पालन-पोषण व सैकड़ों भक्तों-संतों की भोजन-प्रसाद-सेवा पूर्णतः निष्काम होती है । आप उच्च कोटि के गायक, संगीत, नृत्य, संस्कृत के गूढ ज्ञाता एवं श्रीजी के परम कृपापात्र हैं जो विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों के भक्ति रहस्यों का सरल भाषा में विवेचन, महापुरुषों के पदों एवं भक्तों के चरित्रों का गायन 'सत्संग' द्वारा गत् ७० वर्षों से जनमानस को सुलभतापूर्वक उपलब्ध कराते आ रहे हैं । बाबाश्री की अन्तरंग स्थिति का अनुमान उनके द्वारा पदों की रचनाओं में तथा गायन से उद्बोधित होता है जो नित्य रात्रिकालीन आराधना में दर्शकजनों को साक्षात् दिखाई देता है । 'बाबाश्री के सत्संग' को सुनने मात्र से ही अनेक जीवों में आमूल परिवर्तन होते देखा गया, जो जीवनपर्यन्त अन्य साधनाओं द्वारा भी सम्भव नहीं – महापुरुषों के सत्संग का प्रभाव ही ऐसा है ।

श्रीबाबामहाराज का विगत कई वर्षों का 'सत्संग' अब आप maanmandir की Maanini App (apple और android) पर अपने फ़ोन पर भी सुन सकते हैं । 'सत्संग' द्वारा अपने जीवन के बचे हुए वर्षों का सदुपयोग श्रीभगवत्प्राप्ति में कर सकते हैं । 'सत्संग' का आत्मसात् होना बिना 'श्रीभगवान्' की कृपा के सम्भव नहीं है । अनन्त जन्मों के संचित पाप 'सत्संग' सुनने में बाधा पहुँचाते हैं परन्तु 'महापुरुषों की वाणी' का एक शब्द ही अनन्त पापों को काटने में समर्थ है, बस जरूरत है श्रद्धा एवं निष्ठा की ।

'बाबाश्री का सत्संग' आपके जीवन की धारा ही बदल देगा ! अन्यथा जीवन पर्यन्त मात्र घंटी हिलाने एवं मिथ्या साधन या साधन के अहंकार में (मैंने इतना जप किया या इतना पाठ किया) प्राणी की विचारधारा में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं होता और मनुष्य में काम, क्रोध एवं लोभ इत्यादि विकारों का प्रकोप निरन्तर बना रहता है ।

बाबाश्री के शब्दों में – "कोई पंडित बनता है, कोई ज्ञानी बनता है, किसी ने जीवन में बहुत बड़ा नाम कमा लिया है परन्तु जा कहाँ रहा है – अनन्त अन्धकार की ओर ।" प्राणी सन्मार्ग पर चलते हुए भी यह अभिमान कर बैठता है कि हम साधु हैं, विरक्त हैं या अज्ञानवश 'सेवा' को क्रिया समझ कर एक कोल्हू के बैल की तरह जीवन पर्यन्त लगा ही रहता है ।

महापुरुष यह ज्ञान कराते हैं कि 'सेवा' कोई क्रिया नहीं वरन् भाव है तथा साधकों को भावसिद्धि के मार्ग पर अग्रसर करते हैं । तिलक धारण करने से, कंठी पहनने से, कर्णमन्त्र प्राप्त करने से (गुरु-दीक्षा द्वारा प्राप्त मन्त्र का जप करने से), वेष बदलने पर भी यदि 'भाव' में परिवर्तन नहीं हुआ तथा काम, क्रोध, लोभादि अनर्थों का नाश नहीं हुआ तो हम मात्र 'वेष के साधु' हुए और इस कलियुग में यह सर्वत्र दिखायी देता है ।

हिमालय की कंदराओं में व जंगलों में उन महापुरुषों को खोजने की जरूरत नहीं है, बस आवश्यकता है तो सिर्फ इस ज्ञान को प्राप्त करने की – जो बाबाश्री द्वारा 'सत्संग' के माध्यम से सुलभतापूर्वक उपलब्ध है। जरा-सा प्रयास करके तो देखिये, और जब आप कुछ समय बाद अपने अतीत में झाँकेंगे तब यह अनुभव होगा – "अरे ! मेरा जीवन किस अन्धकार की ओर जा रहा था।"समय-समय पर भगवान् अपने परिकरों को निरपेक्ष 'संतों' के रूप में इस धरा पर प्राणियों में भक्ति-संचार के लिये भेजते हैं। इसलिए "बाबाश्री के सत्संग का रस - लूट सको तो लूट लो !" बहुत ही सहज एवं सरल मार्ग है परन्तु बिना कृपा के सम्भव नहीं है। उन निरपेक्ष 'संतों' के पास जाओ जो इस कृपा को मुफ्त में लुटाते हैं।संग्रह-परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष (बाबाश्री) की 'श्रीभगवन्नाम' ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है। परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये इन ब्रज-संस्कृति के एकमात्र संरक्षक-प्रवर्द्धक व उद्धारक ने। विगत् ७० वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से मानमंदिर पर विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्य जनों को आपके देव दुर्लभ सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ, आपके विषय में विविध भक्तजनों के विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन है। इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः श्रीराधारानी की कृपा-प्राप्त किसी बड़भागी जीव को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि (रस के समुद्र) के जिस अतल-तल (अनन्त गहराई) में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिश्योक्ति नहीं कि रस-ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अछूता ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए इसे बिल्कुल भी समझा नहीं जा सकता है । आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल-मिलन का आनन्द; इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके द्वारा सृजित साहित्य के पठन से ही सम्भव है । आपकी अनुपम कृतियाँ – **रसिया रसेश्वरी**, **स्वर वंशी के शब्द नूपुर के**, **बरसाना**, **भक्तद्वय-चरित्र** इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं ।

आपका 'सत्संग' अनवरत चलता ही रहता है । साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल है आपकी रसभरी वाणी । दैन्य की सुरभि से सुगन्धित अद्भुत सर्वोत्कृष्ट रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मिक स्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण-केन्द्र बन गयी । आपकी ओजस्वी वाणी का श्रवण करके सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और आज भी 'धाम और धामी' के शरणागत हैं । श्रीबाबामहाराज का ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त (अद्भुत महिमाशाली जीवन-चरित्र) विस्मयान्वित (आश्चर्यचकित) कर देने वाला स्वाभाविक है ।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी बाधित नहीं हो पायी । श्रीजी की यह 'गह्वर-वाटिका' जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती; शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु सदैव खिला ही रहता है । आज भी इस अजर-अमर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है । आपके अनन्त उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, प्रतिक्षण प्रणाम अथवा शरणागति भी न्यून (कम) है । प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा (प्रेम के साकार स्वरूप) विभूति से कि निज पादाम्बुजों (चरणकमलों) का अनुगमन (आज्ञा-पालन) करने की शक्ति

हम सबको प्रदान करें । आपकी प्रेम- प्रदायिका, परम पुनीता पद-रज-कणिका को पुनः-पुनः प्रणाम है ।

विशुद्ध ब्रजभक्ति की प्रेरणा

आज सुदृढ़ भव में फँसी संकीर्ण बुद्धि ने रसिक महापुरुषों की वाणी पर ध्यान देना छोड़ दिया ।

पूज्य श्रीबाबामहाराज प्रारम्भ में जब ब्रज में नए-नए आये थे तो उनके पूज्य गुरुदेव बाबा श्रीश्रीप्रियाशरणजीमहाराज ने कहा कि तीन प्रकार के भव होते हैं –

१. **भव** – गृह त्याग करके साधु बन गए तो भव से मुक्त हो गए ।
२. **दृढ भव** – देहाभिमान का छूटना, कामादि विकारों का छूटना दृढ भव से मुक्ति है ।
३. **सुदृढ भव** – राग-द्वेष व साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त होना ही सुदृढ भव से निर्मुक्त होना है ।

मुक्त होना तो दूर रहा यह विवाद इतना बढ जाता है कि संकीर्ण बुद्धि आचार्यों पर भी आक्षेप करने लग जाती है । आज अनन्यता की आड़ में मात्र आलोचना-प्रत्यालोचना, पारस्परिक साम्प्रदायिक द्वेष का ही नर्तन-दर्शन हो रहा है । इसलिए प्राचीन महापुरुषों ने खीझ कर अपशब्द (गाली) का भी प्रयोग संकीर्ण बुद्धि के प्रति किया है –

जगत में पैसन ही की माँड़ ।
पैसन बिना गुरु को चेला खसमैं छाँड़ै राँड़ ॥
जप तप जोग ज्ञान वैराग्य की पैसन मारी ...।
धीरज धर्म विवेक सौचता दई पंडितन छाँड़ ॥
संत महंत गाम के आमिल करत प्रजा को दाँड़ ।
'भगवत रसिक' संग बिन सबकी कीन्हीं कलिजुग भाँड़ ॥

(श्रीभगवतरसिकजी)

कलियुग के प्रभाव से आज धाम का स्वरूप विकृत दिखाई पड़ रहा है जैसा कि महापुरुषों ने कहा –

जेते हरि के धाम काम क्रोध क्रीड़ा करें ।
भगवत या कलिकाल में कहो जीव कैसे तरें ॥

भागवत माहात्म्य में भी यही कहा –

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥

(पद्मपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य - १/७२)

तीर्थों में ऐसे अत्युग्र कर्म करने वाले पापियों का निवास है जिनको देखना अथवा जिनसे बोलना भी भयकारक है –

सद्योगीन्द्रसुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्तयः
सर्वेप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगता ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यद्रश्याश्च ये
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

धन-धन वृन्दावन के बामन ।
'अभयराम' ये हू बड़भागी बामन है कि रावन ॥

प्राचीन संतों का ऐसा कथन है कि ब्रज में 'ब्रजवासी, ब्रजहाँसी, ब्रजनाशी एवं ब्रजफाँसी' ये चार प्रकार के ब्रजौकस (ब्रज में रहने वाले) पहले भी थे और अब भी हैं । द्वापर में ब्रजहाँसी, ब्रजनाशी, ब्रजफाँसी तो कंस, पूतना, अघ, बक, वत्स, प्रलम्ब, धेनुकादिक असुर थे और वर्तमान में जो इनके अनुगामी हैं, वे भी ब्रजनाशी, ब्रजहाँसी व ब्रजफाँसी हैं । सच्चे ब्रजवासी तो कुछ ही हैं ।

ऐसी स्थिति में धामोपासक 'धाम' में सच्चे संतों की सन्निधि में रहकर ही अपनी साधना अत्यन्त सावधानीपूर्वक करे । वर्तमानकाल में ही नहीं प्रह्लादजी के समय में भी धर्म अपने सभी अंगों के साथ व्यापार बन गया था –

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणांवार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥

(श्रीभागवतजी ७/९/४६)

वर्तमान में भी सर्वत्र अर्थ की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है, अतः व्यासजी ने कहा कि इस प्रकार से वृन्दावन में रहने से क्या लाभ –

कहा भयो वृन्दावनहि बसै।
जौ लगि व्यापत माया तौ लगि, कह घर तें निकसै ॥
धन मेवा कौ मन्दिर सेवत, करत कोठरी विषै रसै ।
कोटि कोटि दंडवत करै, कह भूमि लिलाट घिसै ॥
मुँह मीठे मन सीठे कपटी, वचन रचन नैननि विहसै ।
मन्त्र ठगोरी कबहुँ न तन्त्र गद, मानत विषय डसै ॥
कञ्चन हाथ न छुवत कमण्डल, मै मिलाय विलसै ।
'व्यास' लोभ रति हरि हरिदासनि, परमारथहि खसै ॥

संकीर्ण लोगों ने 'धाम भगवान्' का हाथ-पाँव काट दिया, 'धाम भगवान्' का स्वरूप ही बिगाड़ दिया । 'धाम भगवान्' के एक-एक अंग संस्थान का वर्णन है 'ब्रजभक्तिविलास' में, उसे न मानना छिन्न-भिन्न करना ही है । आज इसी उपेक्षा से ब्रज के कितने ही पर्वत नष्ट हो गए ...।

वस्तुतः 'बरसाना-गह्वरवन' वृन्दावन से अलग नहीं है । आधुनिक काल के वृन्दावन के संकीर्ण विचारधारा वाले मिथ्या रसिकों के अनुसार – बरसाना-गह्वरवन अलग है, वृन्दावन अलग है, वृन्दावन 'निकुंज लीला' वालों का है और बरसाना तथा शेष ब्रज 'भवन द्वार लीला' वालों का है ।

"**निगम कल्पतरोर्गलितं**" रसमय फल श्रीमद्भागवत में वर्णित भागवत धर्मों के विपरीत जिनकी सोच है, उनके पक्ष में विभिन्न निष्ठान्तर्गत वैचित्रीमय रस का स्वरूप या रसोपासना तो अति दूर की वस्तु है, 'रस' का शाब्दिक ज्ञान भी उन्हें नहीं है, वे तो कूप-मंडूकवत् अपनी निराधार धारणाओं में सिमिट कर उपासना के किसी एक अंश रूपी चावल के टुकड़े को लेकर अपने को 'पंसारी' भी मान सकते हैं । वस्तुतः जिनका 'रस' में लेश भी प्रवेश नहीं है, उनकी बुद्धि में संकीर्ण विचारों का उपद्रव मचना स्वाभाविक ही है ।

सभी ब्रजप्रेमियों से विनय है कि सावधान रहें ऐसे वधिकों से, जो 'धाम भगवान्' को ही खण्डित करने में लगे हुए हैं, इनके पास न उपासना का कोई आधार है, न इनका शास्त्र-सम्मत कोई सिद्धान्त है, न शास्त्र-वचनों का अनुपालन है, एक कार्य अवश्य करते हैं जो इनकी जीविका है – अनन्यता की ओट में हर प्रकार का दाँव-पेच लड़ाकर धाम के स्वरूप का खण्डन करना, अपने जैसे लोगों की भीड़ बढ़ाना, सीधी-सादी जनता को भ्रमित करना; बस यही इनका कार्य विशेष है ।

वर्तमान की इस स्थिति को देखकर 'धाम' में रहकर उपासना कैसे हो और 'साधुता' का वास्तविक स्वरूप क्या है ? सुधानिधिकार व रसकुल्याकार ने इसका बड़ा उत्तम उत्तर दिया है ।

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्यदृश्याश्च ये ।
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

जो अत्यन्त क्रूर हैं, पापी हैं, असम्भाष्य हैं, असंदृश्य हैं (देखने व बात करने योग्य भी नहीं है); ऐसे लोगों में भी परम स्वाराध्य बुद्धि रखकर ब्रज में उपासना करनी होगी। 'ब्रज' का कण-कण 'राधाकृष्णमय' हमारा इष्ट है। रसकुल्याकार का कथन है कि 'स्थापना बल' की श्रद्धा रखनी पड़ेगी। धैर्य से ब्रजोपासना होगी, श्रीगीताजी में भी भगवान् ने यही कहा – धीर कौन है ?

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

(श्रीगीताजी २/१५)

सभी स्थितियों में जो समान है वही धीर है, कालिदासजी का भी यही कथन है – **'विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि तयेव धीरः ।'** विकार का हेतु सामने हो और फिर भी विकारोत्पन्न न हो, वही सच्चा धीर है; बस इसी धैर्य से धामोपासना व अन्तिम लक्ष्य 'श्रीराधामाधव' को प्राप्त किया जा सकता है।

गह्वरवन के वास की, आस करैं शिव शेष ।
ह्याँ की महिमा को कहै, जहाँ श्याम धरैं सखी वेश ॥

बीस कोस वृन्दाविपिन, पुर वृषभानु उदार ।
तामें गह्वर वाटिका, जामें नित्य विहार ॥

'ब्रजवास' से 'ब्रजरस' सुलभ

परमाद्भुत करुणामयी ब्रजेश्वरी 'श्रीराधारानी' की अहैतुकी अनन्त करुणा के परिणामस्वरूप उनके नित्य धाम 'गोलोक' से इस धराधाम पर 'ब्रजभूमि' का अवतरण हुआ; इसी ब्रज में पाँच कोस का वृन्दावन, गिरिराज गोवर्धन एवं यमुनाजी हैं । परम वात्सल्यमयी श्रीराधिकारानी ने गोलोक धाम से अपने 'ब्रज-मण्डल' को पृथ्वी पर इसलिए भेजा ताकि मृत्युलोक के अत्यधिक पतित-पामर एवं दुराचारी प्राणियों का भी इसके आश्रय से सहजता से एवं शीघ्रतापूर्वक कल्याण हो जाए और इन सभी को नित्य धाम की प्राप्ति हो जाए ।

श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि यह 'धाम' तो अत्यधिक पतित, 'पापैकभाजां प्राणी' जो पाप करने के सिवा और कुछ भी नहीं करते, उनका केवल कल्याण ही नहीं करता अपितु उनको प्रेमामृतसिन्धु का भी सार 'श्रीराधामाधव के अन्तरंग रस' का दान करने वाला है –

यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तद्वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६५)

श्रीधाम की कृपा से सुदुर्लभ 'श्रीसहचरी भाव' महापापी को भी प्राप्त हो जाता है; ऐसी इस 'ब्रज-वृन्दावन धाम' की आश्चर्यजनक दुष्प्रवेश-महिमा है । 'दुष्प्रवेश-महिमा' का अभिप्राय है कि श्रीधाम की ऐसी अगाध महिमा में लोग प्रवेश नहीं कर सकेंगे अर्थात् इस पर विश्वास नहीं करेंगे कि धामवास का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है । धाम की इस दुष्प्रवेश-महिमा में आस्था न रखने वालों का संसार में बहुत बड़ा समुदाय है । साधारण सांसारिक लोग ब्रजधाम की अलौकिक महिमा को न समझ सकें, यह तो उनके लिए स्वाभाविक है परन्तु अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आधुनिक काल में जो लोग श्रीकृष्णभक्ति

का उपदेश देकर संसार में भक्तिरस का प्रचार-प्रसार करते हैं, जिनके लाखों की संख्या में शिष्य हैं, लाखों अनुयायी हैं, जो किसी न किसी वैष्णव-सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं, ऐसा देखने में आता है कि वे भी 'श्रीब्रजधाम' की इस दुष्प्रवेश-महिमा में विश्वास नहीं करते हैं और ऐसे लोग अपने अनुयायियों से, अपने शिष्यों से यही कहते हैं कि 'श्रीब्रज-वृन्दावनधाम' में अखण्डवास करने का अधिकार केवल भगवान् के विशुद्ध भक्तों को ही है, साधारण लोगों को तो इस धाम का केवल दर्शन करने के लिए ही वहाँ जाना चाहिए; ऐसा विचार 'धाम की अनन्त महिमा' के प्रति उनके अभाव को तो दिखाता ही है, साथ ही यह भी प्रकट करता है कि इन लोगों का अपने ही सम्प्रदाय के मूल आचार्यों की तथा अन्य धामनिष्ठ महापुरुषों की वाणी में एवं वैष्णव-शास्त्रों, आर्ष-ग्रन्थों के प्रति कोई श्रद्धा-विश्वास नहीं है और इस तरह के लोग समाज में 'धर्माचार्य, गुरु, कथावाचक, आध्यात्मिक उपदेष्टा एवं प्रचारक' बनकर वास्तव में ये ही लोग साधारण लोगों को अपराध के मार्ग पर अग्रसर करके उन्हें विनाश की ओर ढकेलकर कल्याण के सहज मार्ग से वंचित करने में लगे हुए हैं । गम्भीरतापूर्वक वैष्णव-शास्त्रों और धामनिष्ठ महापुरुषों की वाणी का अध्ययन किया जाए तो उनके द्वारा ऐसे गलत मत का कभी भी प्रचार नहीं किया गया; स्वयं श्रीजीवगोस्वामीजी का कथन है –

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणुमनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम् ।
असम्भाष्य तद् भावगम्भीरचित्तान् कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः ॥

'श्रीराधारानी के चरणकमलों की रेणु (रज) की आराधना' किये बिना, श्रीजी के चरणचिह्नों से चिह्नित 'श्रीधाम' का आश्रय लिए बिना तथा श्रीराधिकारानी के भाव से युक्त गम्भीर चित्त वाले 'महापुरुषों के सत्संग' के बिना कोई भी 'श्यामसुन्दर के रस-सिन्धु' में अवगाहन कर ही नहीं सकता है ।